

सिद्ध सतसंग SIDDHA SATSANG

Notes on the Philosophy and Practice
of Gorakh Nath and the Nath School



योगी सूरजनाथ Yogi Surajnath

सिद्ध सतसंग

SIDDHA SATSANG

Notes on the Philosophy and Practice
of Gorakh Nath and the Nath School
(Satsang : Dialogue)

योगी सूरजनाथ, गुरु बुधनाथ जी
Yogi Surajnath, guru Budhnath ji

2023

सिद्ध सतसंग : SIDDHA SATSANG

Notes on the Philosophy and Practice
of Gorakh Nath and the Nath School

लेखक /Author:

योगी सूरजनाथ, गुरु बुधनाथ जी, पिंप्री गवळी, जि. अहमदनगर, 413703, भारत।

Yogi Surajnath, guru Budhnath ji, Pimpri Gawali, Ahmednagar, 413703, India.

© कापी राइट/© Copyright:

योगी सूरजनाथ, गुरु बुधनाथ जी, पिंप्री गवळी, जि. अहमदनगर, 413703, भारत।

Yogi Surajnath, guru Budhnath ji, Pimpri Gawali, Ahmednagar, 413703, India.

Mob. +91 9421437300, 7774007939,

Email: yogisurajnath3@gmail.com

पहला संस्करण प्रकाशन : First Edition Publication:

Yogi Surajnath, guru Budhnath ji, Pimpri Gawali, Dist. Ahmednagar, 413703, India. 2023.

यह किताब, इसके प्रकाशन व कापी राइट अधिकार लेखक योगी सूरजनाथ, गुरु बुधनाथ जी, अपने पास रखते हुए है; तथा इसके मूल स्वरूप में कोई साधू, सज्जन, प्रकाशन इसे as paper text प्रकाशित व वितरित करे खुली है।

This text, with the rights of the author and the copyright holder, Yogi Surajnath guru Budhnath ji, being intact, is open for publication and distribution as paper text by any *sādhū*, gentleman, or publication, but in its original form.

Spirituality/Philosophy/Religion.

ग्यान सरीखा गुरु न मिलिया, चित्त सरीखा चेला।

मन सरीखा मेलू न मिलिया, तीथैं गोरख फिरै अकेला॥

No guru found like wisdom,
no disciple like consciousness,
no friend like the mind –
so Gorakh roams alone. (189)

— Gorakh Sabadi 189

जोग अवरण जोग अभेदं, जोग अपंडित जोग अच्छेदं।

जोग जति सति जोग दया, एहा ग्यान जति गोरख कह्या॥

Yoga is not varna, yoga is not divided,
yoga is wholeness, yoga is flawless,
yoga is meditation, virtue, yoga is compassion,
this is wisdom, says Jati Gorakh. (313)

— Gorakh Sabadi 313

व्यवस्था सै गुरु चेला अर थान मान।

तत्त सूं अलख संग्यान अर ग्यान ध्यान॥

As a system, it is guru, disciple, position and respect.

In truth, it is the alakh sense, insight and meditation.

— Surajnath

विषय सूची : Table of Contents

अनेकों गोरख सबदी गूंफन के साथ
Interweaving many of the Gorakh Sabadis

• Note on Transliterations and Abbreviations	...	09
• प्रस्तावना	...	10
• Introduction	...	12
• कागज बोध, चिंतन बोध, दरसण बोध Paper <i>Bodh</i> , Thinking <i>Bodh</i> , Observation <i>Bodh</i>	...	15
• गोरखनाथ का जीवन व कार्य — एक नजर	...	17
• The Life and Work of Gorakhnath — an Overview	...	25
• अस्ति जीये वह अस्तिक	...	37
• Whoever Lives What is is <i>Āstik</i>	...	41
• चेहरा : Face	...	46
• संबंध का आइना व सम्यक सम्मान	...	47
• Mirror of Relationship and Being Respectful	...	49
• सत सनातन, नकली सनातन, आस्तिक, नास्तिक, भगवान व मोमिन का सच	...	50
• Truth of Right <i>Sanātan</i> , Fake <i>Sanātan</i> , <i>Āstik</i> , <i>Nāstik</i> , <i>Bhagavān</i> and <i>Momin</i>	...	55
• साधू दीक्षा	...	61
• Initiation to be a <i>Sādhū</i>	...	62

• आदेश, अभिवादन का बोध	... 64
• The Understanding of <i>Ādesh</i>	... 69
• गोरखनाथ मठ (मंदिर), गोरखपुर	... 73
• Gorakhnath <i>Math (Mandir)</i> , Gorakhpur	... 76
• पिंड की अनित्यता व प्रतीत भव	... 81
• Impermanence of the Self and the Experience of Becoming	... 88
• गोरखनाथ व नाथ यह शैव, वैष्णव नहीं है, हिंदू, मुस्लिम नहीं है	... 95
• Gorakhnath and Naths are neither <i>Shaiva</i> nor <i>Vaishnavs</i> , neither Hindu nor Muslim	... 103
• सुरति : <i>Surati</i>	... 112
• दरसण बोध : The Understanding of Observation	... 114
• पथ का मर्म : The Heart of the Path	... 117
• योग : गोरखनाथ अर पतंजलि	... 120
• Yoga: Gorakhnath and Patanjali	... 121
• मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा का ढोंग – धरमनाम धंधे का एक जुगाड़	... 123
• Hypocrisy of Imparting Life in an Effigy, and Business in the Name of Religion	... 128
• आदिनाथ, शिवलिंगादि बनवा-बनवी — यह अग्यान् काल दुख गति	... 132

• सिद्ध सिद्धांत पद्धति —	
गोरक्षनाथ के नाम पर एक प्रदुषित किताब	... 138
• <i>Siddha Siddhanta Paddhati</i> —	
an interpolation in the name of Gorakshanath	... 143
• एक ऋग्वैदिक उद्धरण	... 148
• सेक्स (काम, कंद्रप) व ब्रह्मचर्य	... 152
• सतयुग, कलियुग : <i>Satyayuga, Kaliyuga</i>	... 156
• नवनाथ चौरासी सिद्ध — एक मनमुखी बात	... 159
• ग्रह फलित मनमुखी	... 162
• नाथ नादी-पवित्रि	... 167
• योगी वा साधू की धूनी	... 170
• समाधि, स्तूप	... 174
• राजा सुहेलदेव भर थारू — भरथरी नाथ	... 177
• ऋग्वेद की दुनिया	... 179
• वर्णाश्रम उच्च निचता — मनुवाद	... 181
• मूढता	... 184
• दत्त का कुछ भी बाकी नहीं	... 188
• Datta is all Finished with	... 192
• नवनाथ भक्तिसार वा कथासार —	
एक धर्मांध ग्रंथ, गंदा पानी	... 194
• शंकराचार्य व मत्स्येंद्रनाथ का जन्म	... 197

• योगी/जोगी एवं गृहस्थ, संन्यासी	...	199
• जैन परंपरा की कुछ बात	...	206
• जीव जगत दया व आहार चक्र	...	209
• मुहम्मद विचार	...	214
• गोरख के नाम कैसा वैदिक धंधा	...	217
• वैदिक धंधा	...	219
• अष्टावक्र गीता	...	224
• मराठा यादव पटेल राजपूत	...	225
• हिंदू वा हिंदूत्व	...	227
• देह के तुकाराम	...	233
• आळंदी के ज्ञानेश्वर	...	237
• ओम — एक अन्यथा घुसपैठ	...	243
• सतसंग और शास्त्रार्थ	...	247
• भगवा (Ochre)	...	250
• Meditation is Movement in Silence	...	252
• जोग अवरण जोग अभेद	...	264
• योगी सूरजनाथ, अल्प परिचय व आभार	...	266
• Yogi Surajnath, a Brief Biography, and Acknowledgements	...	269
• References	...	271

NOTE ON TRANSLITERATION

Here is followed the standard transliteration of devanāgarī for the sabadis themselves, with some exceptions, (thanks to Bhagavan Nath, Ibiza, Spain). The Hindi text contains much nasalization of vowels indicated by a dot above the vowel marker. Conventionally this is transliterated by ṁ which we feel is distracting, and would inhibit the recitation of the verse, so we represent nasalization by the tilde, and thus we have â ã î ï ã ü Û õ ãũ etc., instead of aṁ āṁ iṁ īṁ uṁ ūṁ oṁ auṁ etc.

ABBREVIATIONS

- | | |
|-----|---|
| GB | <i>Gorakh-Bānī</i> , Barthwāl 1960 |
| GG | <i>Gorakh Guṭakā</i> , Candranāth 1975 |
| JDP | <i>Sabdī</i> , Jodhpur Darbār Pustakālaya, Offredi 1991 |
| McG | McGregor 1995 |
| ms | manuscript |
| mss | manuscripts |
| RLS | <i>Gorakh Bānī</i> , Śrīvāstava 2071 |
| WC | Callewaert 2009 |

प्रस्तावना

यह सिद्ध सतसंग किताब, हिंदी व अंग्रेजी में, अस्तित्वगत धरम संग्यान की मौलिक बातों के उजागर होने में सहजता से सहायक है; तथा यथाभूत जीवन प्रवाह में, संबध के आइने में, काल दुख अग्यान पार पथ देषी है।

धरम संग्यान की दो मौलिक बातें —

1. धरम के नाम पर चलनेवाली अनेक परंपराओं को समझना, विश्वास, मत-मान्यताओं की व्यर्थता को समझना, व उनका अपने मन से सहज साइड हो जाना।

2. विचार गामिता व ध्यान गामिता की समझ के साथ, मतलब काल गति और कालांत (the ending of time) की समझ सूं, अस्तित्वगत धरम संग्यान के लिए खुलेपन से होते, दैनंदिन जीवन में जागते, सोते, जत सत (meditation and virtue) की गंभीरता को सहज जीते, जीने की कला में स्पष्टता से होना।

परंपरा, विश्वास, मत-मान्यताओं के साथ काल विचार गामिता की समझ, व ध्यान गामिता के साथ कालांत की समझ, यह दोनों बातें एक-दुसरे के विरोधी नहीं बल्कि मूलतः अलग है, और इनकी समझ चैतसिक खुलापन है, अलख संग्यान सूं शुन्यता का उदय है, जो इस किताब की सारगर्भिता है।

इस सतसंग में कुछ गोरख सबदीयों का सहज गुंफन है, जो योगी सूरजनाथ और भगवान नाथ ने मूल हिंदी सबदी के साथ अंग्रेजी में भाषांतर कियी हुयी हैं। सो ये सबदीयां हमारी ही भाषांतरित "गोरख सबदी Gorakh Sabadi, The Sayings of Gorakh Nath", 2022, इस स्वतंत्र व संपूर्ण पुस्तक से लियी हुयी है।

गोरख-बानी की अपनी भूमिका में, पेज 18, बड़थवाल कहते हैं, "'सबदी' गोरख की सबसे प्रामाणिक रचना जान पड़ती है। वह सब प्रतियों में मिलती है। गोरखनाथ "एवं सबदी की ऐतिहासिकता के बारे में, भूमिका, पेज 19-20, बड़थवाल कहते हैं, "मैं अधिक संभव यह समझता हूँ कि गोरखनाथ विक्रम की ग्यारहवीं शती [इसवी दसवीं शती]में हुए।" तथा 'सबदी' नाथ पंथ के प्रवाह में चली रचना श्री गोरख गुटका में भी सबसे महत्वपूर्ण है। गोरख सबदी नाथ-सिद्ध पंथ का प्राण है, और अध्यात्म जगत की एक कालजयी देषना है।

इस सिद्ध सतसंग किताब का, व्यक्तिशः या साथ मिलकर, कुछ नियमित अध्ययन मनन करने से, सजग ध्यान संग्यान से, आपके आंतरिक व दैनंदिन जीवन में अनेक अच्छे परिणाम स्पष्टता से दिखेंगे, आप मानसिक हल्केपन के साथ संबंध के आइने में जिम्मेदारी व दया-करुणा से होंगे।

इस कार्य में अनेक साधू एवं सज्जनों का सहयोग हुआ है। सो आंतरिक साधना-खोज एवं साथ-सहयोग से यह कार्य सिद्ध इति।

— योगी सूरजनाथ, गुरु बुधनाथ जी।

INTRODUCTION

Siddha Satsang, a bilingual text in Hindi and English, will help us to understand the basics of religion and meditation. It helps one understand what thought and desire or time and sorrow are, and what the ending of time and sorrow is, in the movement of life as it is, which is a mirror of relationships. The ending of time and sorrow is the ending of ignorance from within, which, therefore, is ending it from the global stream as a whole, because these are basically interrelated and not separated.

The basics of the religious sense:

1. To sense what is false traditions and beliefs, ideas and ideologies that go in the name of religion, and to reject them from within.
2. To understand what is happening with thought and desire or time, and what is happening in meditation is to be clear of what thought and time is, and what is timelessness or the ending of time. In our daily life while waking, working, sitting, and while going to sleep, is to be coming to live, by meditation and virtue intelligently, which is the basic art of life, with the clarity of insight.

Thought and timelessness are not opposites of one another, they are fundamentally different. Understanding this is the openness of our mind, that is, insight into the *alakh* sense, which implies observation of what is, the awakening of emptiness, and the emptying of the consciousness all of which is explained in this text.

Many of the Gorakh Sabadis are interwoven all through this discussion, taken from our comprehensive Sabadi text, गोरख

सबदी Gorakh Sabadi, The Sayings of Gorakh Nath, 2022, edited and translated by Yogi Suraj Nath and Bhagavan Nath. On page 18 of his Introduction to Gorakh-Bānī, Barthwal says: “‘सबदी’ गोरख की सबसे प्रामाणिक रचना जान पड़ती है। वह सब प्रतियों में मिलती है।” “‘*sabadī’ gorakh kī sab se prāmāṇik racanā jān partī hai. vah sab pratiyō mẽ miltī hai.*” “‘*Sabadi*’ is seen as the most authentic composition of Gorakh. It is found in all manuscripts.”

Further, on pages 19-20, Barthwal says: “मैं अधिक संभव यह समझता हूँ कि गोरखनाथ विक्रम की ग्यारहवीं शती में हुए।” “*māĩ adhik sambhav yah samajhatā hũ ki gorakhnāth vikram kī gyārahavī śatī mẽ hue.*” “I believe that it is more than likely that the time of Gorakhnath is the eleventh century V.S. [the tenth century A.D.].”

Accordingly, Sabadi is the most important part of the *Śrī Gorakh Guṭakā*, a composition within the Nath tradition.

By reading and absorbing this text alone or sharing it with family or friends, you will see many positive effects in your inner and worldly life, you will feel a mental unburdening, and in the mirror of relationship, you will be concerned to live being responsible with affection.

All the articles in English were edited by Bhagavan Nath of Spain and Rosemary Nath of Guatemala for their literal correctness or richness. We are thankful to the many *sādhus* and *sajjans* or friends for their cooperation in this work. Thus, through meditation work and inner enquiry, and cooperation, this work is siddha.

— Yogi Suraj Nath, guru Budhnath ji

सिद्ध सतसंग

SIDDHA SATSANG

Notes on the Philosophy and Practice of
Gorakh Nath and the Nath School

V V V

कागज बोध, चिंतन बोध, दरसण बोध
*PAPER BODH, THINKING BODH,
OBSERVATION BODH*

सबद हमारा षरतर षांडा, रहणि हमारी साची ।
लेषै लिषी न कागद माडी, सो पत्री हम बाची ॥

Our word is a sharp sword,
our way of life is true,
it is not a written text nor pretty paper,
but I have got the message. (264)

बोध या समझ तीन प्रकार से है : 1. कागज/श्रुत बोध; 2. चिंतन बोध; 3. दरसण बोध।

गोरख इस सबदी 264 में तीनों प्रकार के बोध की बात करते हैं। प्रथम दो प्रकार के बोध — सत के बारे में तलवार की तरह धारदार कहे या लिखे शब्द हो, या धरम के नाम पर चैतसिक अवलंबन के बगैर विचार

पूर्वक सत शील जीना — यह ग्यात गामिता है, पर दैनंदिन जीवन गति में इनकी अपनी जगह है, व मर्यादा भी है। दरसण बोध सारे ग्यात से मुक्त होता है, काल दुख के अंत की क्षमता से होता है।

सो हमारी जिम्मेदारी है कि, गोरख, बुद्ध आदि महामानवों की बोली बात हम सम्हाले, उसका विवेकशील चिंतन करें, दैनंदिन जीवन में विचारशील होकर जीये। पर आगे, जैसे गोरख कहते हैं, हम यह भी समझे कि, दरसण बोध ही काल दुख अंत के साथ मीठे मरण की क्षमता से है।

There are three kinds of *bodh* or understanding, namely:

1. *bodh* as what we see or read on paper etc. or hear from somebody;
2. *bodh* as our own rational thinking without depending on any person or book for psychological or religious matters;
3. *bodh* as observation of what is on the basis of freedom from the known by knowing its place and limit.

Or, briefly, paper *bodh*, thinking *bodh*, observation *bodh*.

Gorakh speaks of all these three *bodhs* in this sabadi 264. The first two, whether they are clear or true words, or thoughtful, truthful living, have their place in our lives and also have their limit, and so we care for what Gorakh, Buddha and Siddhas say. However, it is the observation *bodh* which is capable of ending time and sorrow, and effecting sweet dying.



गोरखनाथ का जीवन व कार्य – एक नजर

भारत में नाथ जोगी (योगी) व अन्य संन्यासी पंथों में किसी तरह से एक प्रथा चली कि, साधू अपना साधू, संन्यासी होने के पहले का पारिवारिक, शैक्षणिक, सामाजिक आदि इतिहास अमूमन नहीं बताते। और इस कारण से या जैसे भी गोरखनाथ, जो हमारे साथ एक आम मानुस के रूप में, खोजी के रूप में तथा कालजयी महासिद्ध के रूप में 10 वी इसवी सदी के आसपास रहे, उनके वैयक्तिक ऐतिहासिकता के बारे में हमें जानकारी कम है, या नहीं के बराबर है। तथा ऐसे ही अन्य बहुत से नाथ सिद्धों के बारे में हमें कम जानकारी है, या जो है वह प्रदुषित है, विकृत मत या कहानियां हैं।

भारत के मध्य युगिन काल में किसी तरह से शालेय शिक्षण की बात आम लोगों के पहुंच के बाहर रहीं। और कुछ तथाकथित शिक्षित पर धर्मांध तत्व अपने अहंगंड व मान्यताओं के लिए गोरख, मछिंद्र सहित सिद्धों, बुद्धों के नाम पर जानबूझकर मिथ्या कथा कहानीयां, तंत्र-मंत्र आदि जंजाल रचकर प्रचारित करते रहे। ऐसे ही गोरख, मछिंद्र व नाथ सिद्धों के नाम पर नवनाथ भक्तिसार, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, कुलार्णवतंत्र, कौलज्ञाननिर्णय आदि रचनाएं नाथ सिद्ध प्रवाह को प्रदुषित व मँनेज करने की नीयत से लिखी गई, व प्रचारित कियी जाती है, यह साफ है। सो तथाकथित शाबरी मंत्रादि के नाम पर नाथ रहस्य की बातें मनगढ़ंत है, अग्यान अर दुख है। और ऐसे झूठे प्रचार में आम

जनों के साथ कई साधू व विद्वतजन भी भ्रमित होते देखे जाय यह विडंबना है। मंत्र, तंत्र आदि ध्यास में शक्ति का कुछ अनुभव आना काल, दुख, अग्यान गति का हिस्सा होता है। सत और शक्ति साथ हो यह जरूरी नहीं है। सत के खोजी मिथ्या को देख समझकर नकार देते हैं, और जो नहीं मालूम है उस बाबत कल्पनाएं नहीं करते।

कछु मगज भीतरी ख्याल रे! — गोरख।

हम खुले व खोजी मन से होते हुए गोरख अर ऐसे महासिद्ध सत की क्या बात कहते हैं इसे समझे, व उसे सम्हाले। "सबदी", मतलब गोरख के कहे सबद, जो जोग वा धरम की एक छोटी सी पर कालजयी बानी है, (जैसे बुद्ध की कालजयी बानी एक विशाल रचना है), इसे कुछ गंभीर व खोजी साधकों, सिद्धों ने, तथा कुछ पुस्तकालयों ने काल की गति में सम्हालकर रखा है। सबदी गोरख है! और गोरख सबदी ऐसे अमिय का निर्देशन है जिसमें काल की गति में अनंत गोरख चेतन करते जाने की असिम क्षमता है। धन्य है, बुद्ध की बातें सम्हालकर रखी गई, भारत में नहीं, भारत के बाहर!

हम नाथ सिद्ध, तथा जन जन, नाथ पंथ के प्रवाह में यह बात सुनते, जानते आए हैं कि, गोरखनाथ अपनी लंबी उम्र में (100 साल वा सो) भारतीय उपमहाद्वीप में चारों तरफ रमण किये, बड़े पैमाने पर बहुजन हिताय बहुजन सुखाय जोग-धरम चेताया, नाथ पंथ व अनेकों मठों की स्थापना कियी; और उनका आखिरी बार दरसण उनके जीवन के अंतिम

पड़ाव में गोरखपुर में, उत्तर भारत, हुआ। तथा यह भी कि, गोरखनाथ और नाथ पंथ के नियम अनुसार किसी भी नाथ साधू का शरीर छूटने के बाद उस मृत शरीर को अमूमन मिट्टी में समाधि दीयी जाती है, जमीन में समा दिया जाता है। यहां किसी अग्र साधक के या पार सिद्ध के मृत शरीर धातु के महत्व को ऐसे समझे कि, मृत चंदन की लकड़ी में उसके मरने के बाद भी खुशबू तरंग होते हैं। सो अग्र या निरवाणिक साधू-सज्जनों के मृत शरीर की सादगी के साथ अंत्य विधि उपरांत उस शरीर धातु पर स्तूप बनाने का बुद्ध निर्देश करते हैं। सिद्धों व बुद्धों की बात मूलतः एक संग्यान है। शरीर धातु के बारे में हम गोरखनाथ के शब्दों में यह भी जाने कि —

पंच तत्त की काया विनसी, राखि न सक्या कोई।

काल दवन जब ग्यांन प्रकास्या, बंदत गोरख सोई॥

— गोरख-बानी, पद 8/38

गौरतलब है, कई लोग अपने अग्यान से या जैसे भी यह कहते पाए जाते हैं कि, गोरखनाथ अयोनी, अमर काय है, अस्तित्व में किसी तरह से विचरण करते हैं आदि। सो जिनको ऐसा लगता है कि, गोरखनाथ तथाकथित रूप से अयोनी, अमरकाय है, कोई अफलातून या अनैसर्गिक है, व ऐसे कथा-कहानीयों के कतवार, जिनकी कामन सेंस चेतन नहीं, उनकी बातों को सीरे से साइड करते हुए उनके लिए कछु मगज भीतरी ख्याल जगे यह दया भावना है। सत की बात यह कि एक ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में गोरखनाथ, जो हमारे साथ कभी रहे, वह आज नहीं है; तथा गोरखनाथ आदि के रूप में किसी को कोई शक्ति का अवाहन,

संचरण या संमोहन होता है, तो वह उसकी वैयक्तिक बातें हैं, जिनका हमारे लिए महत्व नहीं है; और कालातीत तत्त्व के रूप में गोरख, जिसकी गोरखनाथ ने खुद अपने भीतर खोज कियी और मीठे मरण मरे, उस कालातीत तत्त्व को हम जाने अर जिये, हम मीठा मरण मरे, यह हमारे लिए जरूरी है।

आगे मानवता इस गोरख सबदी रूपी कालजयी धरोहर को जैसी है वैसे शुद्ध रूप में सम्हाले यह सत संवेग हैं। गोरख अर सबदी में मंत्र, तंत्र, पूजा-पाठ, भक्ति आदि की कोई जगह नहीं है। गोरख सबदी नाथ पंथ का प्राण है; तथा जोग वा धरम जगत में गोरख का स्थान सबदी के साथ कालजयी है। कहने की जरूरत नहीं कि, नाथ पंथ में जिम्मेदारी के साथ साधना का स्वातंत्र्य होने से कोई साधक इश्वर-अल्ला, समाधि-दरगाह, देवी-देवता, प्रेत-पिशाच, मंत्र-तंत्र, औषधि-रसायन आदि कुछ करता है, तो यह उसकी वैयक्तिक रंजन की बातें हैं।

यहां हम एक और बात का जिक्र करे कि, मछिंद्र-गोरख अर लिडबिटर-जिद्दू इन जोड़ियों में कुछ बातें आश्चर्यजनक रूप से समान दिखाई देती है। दादा गुरु मछिंद्रनाथ ने गोरख को बालपन में ही खोज लिया, उनकी ध्यान-ग्यान संग्यानी परवरीश कियी। लिडबिटर ने जिद्दू को बालपन में खोजा, उनकी प्रारंभिक परवरीश कियी व अनुशासन के साथ कुछ सिख दियी। मछिंद्रनाथ व लिडबिटर के सेक्स बाबत विचारों में भी एक समानता है ऐसा कह सकते हैं। और यह भी कि, क्रमशः जब गोरख व जिद्दू निरवाणिक मास्टर्स के रूप में सामने आये, तो मछिंद्र व

लिडबिटर ने अपने आप को सहज अलग कर दिया। आगे यह भी कि, गोरख व जिद्दू के दीर्घ जीवन, दूर दूर तक प्रवास, और उनका सत का सौदा ना करनेवाले (uncompromising) धार्मिक मिशनों में, जैसे भी हो, समानता है। तथा 91 वर्ष की उम्र में जब जिद्दू की ओहायो (Ojai), कैलिफोर्निया, यहां 1986 इसवी में मृत्यु हुई, तो उनकी इच्छानुरूप उस समय वहां उपस्थित सिर्फ 8 (eight) लोगों ने किसी भी तरह के धार्मिक कर्मकांड के बगैर उनकी अंत्य विधि कियी। और यदि इस बात को जे. कृष्णमूर्ति फाउंडेशन रेकार्ड नहीं करता, तो पता नहीं उस बाबत आज हम कितनी कथा कल्पनाएं सुनते।

गोरखनाथ जी का आखिरी बार दर्शन गोरखपुर में हुआ, यह एक प्रवाही सुचना के रूप में भेग भगवान में हम जानते हैं। आगे, साधू सज्जनों के साथ सूरजनाथ कहता है कि, हम गोरख के नाम पर कल्पनाएं नहीं करते, तथा ऐसी बातों में नहीं उलझते जो कामन सेंस (common sense) के साथ मेल से नहीं होती हैं।

इहां ही आछै इहां ही अलोप, इहां ही रचिलै तीनि त्रिलोक।

आछै संगै रहै जू वा, ता कारणि अनंत सिद्धा जोगेस्वर हुवा॥३॥

— गोरख।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi 1

बसती न सुन्यं, सुन्यं न बसती, अगम अगोचर ऐसा ।

गगन-सिखर महीं बालक बोलै, ताका नाँव धरहुगे कैसा ॥

Neither the manifesting nor emptiness,
neither emptiness nor the manifesting,
not known, not sensed, so!

High in the firmament the child speaks,
who can name him? (1)

पहली ही सबदी में गोरख साफ कहते हैं कि, नाम-रूप व शुन्यता यह अलग अलग वास्तविकताएं हैं, जीवन की समग्रता में यह अस्तित्वगत भिन्न स्तर है। चित्त आकाश की ऊंचाई में, निर्जरित चित्त में, परम सत की उकलन एक बालक के बोल की तरह होती है, जिसका बखान नहीं किया जा सकता, ऐसा कहते हुए गोरख उस बाबत शायद ही बात करते हैं। गोरख तत्त दरसण (तत्त्वदर्शन) वा तत्त ग्यान (तत्त्वज्ञान) का सुस्पष्ट उद्घोष करते हुए कहते हैं कि, पूरा अस्तित्व तीन मूलतः अलग स्तरों में विभाजित है; और आगे सबदीयों में यह स्पष्ट है कि, पिंड (जीव, आत्मा या आत्मवस्तु) यह बसती या नाम-रूप का हिस्सा है। और हमारा सम्यक दरसण, ध्यान, यह शुन्यता का आत्मवस्तु या बसती के साथ पूलना है, जिसमें नाम-रूप पिंड या आत्मवस्तु का शुन्यता में

समापन (absorption) होते रहता है, हमारा मीठा मरण हमें साफ होता है।

गोरख, पुनर्उच्चारण के साथ, पहली ही सबदी में स्पष्ट करते हैं कि, परम सत [चाहे तो God आदि कहे] यह नाम-रूप नहीं है और शुन्यता भी नहीं है। तथा अजानता वा अलख संग्यान, मतलब ग्यात की जगह व मर्यादा को समझकर ग्यात से मुक्तता, सम्यक शोध व सिख का आधार है।

उल्लेखनीय है कि गोरख, बुद्ध एवं जिद्दू (जे. कृष्णमूर्ति) ये तीनों महामानव या महासिद्ध, तत्त दरसी संग्यान सूं तत्त ग्यान की मौलिक बात करते हुए, अस्तित्व की समग्रता के बारे में मूलतः एक ही बात कहते हैं। गोरखनाथ सारे अस्तित्व के बसती, सुन्यं एवं अकथ सत (अनिर्वचनीय परम सत) ऐसे तीन मूलतः अलग स्तर बताते हैं; इसी बात को बुद्ध नाम-रूप सत, बोधि सत एवं निरवाण सत कहते हैं; और जिद्दू इन्हें Intellect, intelligence और supreme intelligence कहते हैं।

अगम मतलब जाना हुआ नहीं, ग्यात नहीं। ग्यात हमेशा भूतकाल की बात होती है। अगोचर मतलब विचार सहित इंद्रियों की अपनी ग्रहण क्षमताओं के परे। परम सत अगम अगोचर कहा गया है। शुन्यता भी इंद्रियों की अपनी ग्रहण क्षमताओं के परे है; परंतु अलख संग्यान व मन की वर्तमानता यह समग्रता है, भले मन में विचार शृंखला चलती हो या नहीं, और इसमें शुन्यताका अपने से कल्पनातीत वा निःशेष से जागना होता है, जिसमें मन को

शुन्यता की अंतर्समझ (insight) होती है, सो शुन्यता के जगने के लिए मन कभी भी खुला होता है।

यह भी नहीं/वह भी नहीं ऐसी डबल नकारात्मकता इस सबदी में होने के कारण कुछ वाचक ऐसा सोच सकते हैं कि, यह सबदी नागार्जुन की तार्किक विवेचनात्मक कारिकाओं से प्रभावित है। तथापि, इस सबदी का नागार्जुन से कोई संबंध नहीं है।

Here Gorakh simply says that the manifesting (name and form) and emptiness (timelessness, divine fire, *bodhi*) are distinct realities, that they are altogether different planes of existence. That is, Gorakh declares that the totality of existence is absolutely divided into three different planes; in the sabadis it is explained that the self is a part of the manifesting or name and form; and our right meditation, observation, is the awakening of emptiness into the self, in which the self is being absorbed into emptiness. The awakening of divine fire and the dying of the self, of time, is explained in these sabadis.

Gorakh hardly ever speaks about an absolute or supreme plane, simply likening its unfolding to the speech of a child in the inner firmament, in the emptied self, that cannot be named or described. Gorakh shows the very first step, that supreme truth is neither the manifesting nor emptiness, which he indicates through repetition. That innocence or the *alakh* sense is the basis of enquiry, of learning.

Agama means not known, the unknown; *agocara* means not graspable by the sense organs, including thinking, on their own. Supreme truth is said to be *agama*, *agocara*. Emptiness is beyond the reach of the sense organs on their own, but the

alakh sense and the presence of the mind, despite its chattering, is wholeness, and here is the awakening of emptiness by itself from nowhere, in which the mind gets insight, and is open to receive it at any time.

Some readers may feel that because of the double use of neither/nor in this sabadi it is do with Nāgārjuna's logical analytical *Kārikās*. However, this sabadi is nothing to do with Nāgārjuna.



THE LIFE AND WORK OF GORAKH NATH – AN OVERVIEW

In India it is generally accepted that *sādhus* do not speak of their history, their family background, education, society etc. Consequently, we know very little of the personal history of Gorakhnath, who lived with us around the 9th or 10th centuries as a lay human being, a seeker, an enlightened person and one of the all-time masters. Similarly, we know very little about other great siddhas, or what we know about them are interpolations, corrupted stories or myths. Because of a corrupt and discriminatory education system, a basic academic education was out of the reach of ordinary men and women. A few educated but socially biased, one-eyed, elements, becoming engaged in beliefs and traditions in the name of religion and society, have written and propagated many stupid, false stories and books containing their ideas and ideologies, some *tantras* and *mantras* etc. in the names of siddhas and buddhas. Thus, we find various texts such as

Siddha Siddhānta Paddhati, Kularnava Tantra, Kaulajnana Nirnaya, Navanath Bhaktisar etc. ascribed to Gorakhnath, Matsyendranath and other Nath siddhas. Alleged Nath secrets such as *śābarī mantras* etc. are thought-produced things that lead to nowhere but sorrow and ignorance. It is a shame that many *sādhus* and others are deluded by such things. Experiencing some energy while contemplating, practising *mantras, tantras* etc. are part of the field of time, and inevitably end in sorrow. Truth seekers discern false things, deny them, and do not imagine about things that they do not know.

kachu magaja bhītari khyāla rai

"Dear, isn't there some sense in your brain!"

— Gorakh.

Let us be open, with an enquiring mind, and thus understand what Gorakh and other great siddhas say, and care for their right sayings. "Gorakh Sabadi" means the Sayings of Gorakh Nath, which is a small but timeless treasure of yoga and religion, (whereas for example, the Buddha's sayings are a vast literature), that has been maintained intact by serious explorers, scholars and libraries. Gorakh Sabadis are Gorakh! Gorakh Sabadis are capable of producing any number of Gorakhs in the course of time. It is a great goodness that the sayings of the Buddha are maintained safe, not in India, but abroad!

We, Nath siddhas and people in general, have been hearing that Gorakhnath in his long life (of about 100 years or so) travelled throughout the Indian subcontinent, helping the awakening of yoga or religion on a very wide scale for the

benefit of very many people and founding many Nath maths and ashrams. It is heard that Gorakhnath was last seen in Gorakhpur, in northern India. The general practice is that when a Nath *sādhū* has died, he or she is buried in the ground. We may understand the importance of the dead body (material or bones) of some advanced meditator, or of a nirvanic person, that it is like dried sandal wood, as it emits perfume for a long time after death. Thus, the Buddha advised us to build a *stūpa* for the remains of an advanced meditator or nirvanic person. The sense of siddhas and buddhas is basically one and the same. Let us know about our body matter in the words of Gorakhnath:

pañca tatta kī kāyā vinasī, rākhi na sakyā koī
kāla davana jaba gyāna prakāsyā, badaṇṭa gorakha soī

The body of the five elements is perishable,
nobody can keep it forever.

Time is burned with the light of knowledge,
that's what Gorakh is saying.

— *Gorakh-Bānī, Pada 8/38*

Perhaps because of their ignorance, some people declare that Gorakhnath's body is immortal, that somehow he is roaming around alive. However, the truth is that Gorakhnath was an historical person who lived with us and is no more with us. If someone says he or she has invoked or experienced Gorakhnath, that is his or her personal (mental) matter coming from a relationship with the global unconscious, but it is not important for us, as we see Gorakh as timeless truth or timelessness and psychological dying that is sweet and

important for us. It is hoped that humanity may take care of this timeless spiritual treasure of Gorakh Sabadi as it is, to keep it intact. It will be seen that in the Gorakh Sabadis there is no place given to *mantra-tantra*, *pūjā* or worship, *bhakti* or prayers and so on. Gorakh and his Sabadis are the heart or the core sense of the Nath *Panth*; with the Sabadis, the place of Gorakh in the world of yoga or religion is evergreen. In the Nath *Panth* there is freedom of enquiry and *sāadhanā* with the sense of responsibility, so if some *sādhaks* or seekers are doing *sāadhanās* in the name of God or *Īśvara*, *samadhis* and *dargāhs*, gods and goddesses, spirits and graveyards, *mantra-tantra*, medicine and chemistry etc., these are practices of their personal interest or pleasure.

Let us look into another thing, namely that we find surprising similarities between the pairs of Macchindra-Gorakh and Leadbeater-Jiddu Krishnamurti. Dada guru Macchindranath discovered Gorakh in his childhood or early age, and helped him to grow with good health, meditation and wisdom. Leadbeater found Jiddu Krishnamurti in his childhood or early age, took care of him in his early life with Annie Besant, and helped in his learning with discipline. We can also say that there are similarities between Macchindra and Leadbeater in regards to their thoughts about sex. Further, when Gorakh and Jiddu came forth as nirvanic masters, Macchindra and Leadbeater respectively simply removed themselves from the scene and the field was left open for Gorakh and Jiddu for their religious missions. Furthermore, a similarity is observed in the life styles of Gorakh and Jiddu, such as, their long life span, wide and far journeys throughout their life, and their uncompromising religious missions. When Jiddu died at age

of 91 in Ojai, California in 1986, at his wish that there be no pomp on his death and cremation, only eight people were present to complete the ceremony of his cremation, dispose of his ashes and bones as advised by Jiddu himself, and all this was done without rituals from any religious tradition. If these things, including what he said in his life, had not been recorded by the Krishnamurti Foundation, it could be guessed that we might have started to hear nonsense things and stories about his life and work.

Gorakhnath was last seen in Gorakhpur – this we know from authentic information in *Bheg Bhagavan* of the Nath *Panth*. A sane person, a man of common sense, will neither produce imaginary things about Gorakh and siddhas etc. nor will he puzzle over things which are far from common sense.

ihā hī āchai ihā hī alopa, ihā hī racilai tīni triloka
āchai sangai rahai jū vā, tā kāraṇi ananta sidhā
jogesvara hūvā

Here is what is, here the invisible,
here the three worlds are created;
so be open and stay with what is,
that's how untold siddhas became
Yogeshvaras. (3)

— Gorakh.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi 4

वेद कतेब न षाणीं बांणीं, सब ढंकी तलि आंणीं ।

गगनि सिषर महि सबद प्रकास्या, तहं बूझै अलष बिनांणीं ॥

No Vedas, no holy book,
no speeches, no sermons,
they all mask the truth.
The word shines high in the firmament,
there the vigyani sees the unseen. (4)

अलख = अ- + लख। अ- = ना, नकार, un-, free from; लख (लखना से, लख/लखित/लखा हुआ) = देखा हुआ, सुना या जाना हुआ, ग्यात। संस्कृत में अ- + लक्ष्य = अलक्ष्य है। लक्ष्य का मतलब है निशाना, साध्य, आदर्श, भविष्य की कोई बात, कि जो हमेशा ग्यात के, भूत के, आधार पर होती है। अलख संग्यान से मतलब है ग्यात की जगह व मर्यादा समझकर ग्यात से मुक्तता। यह सूझबूझ के साथ अजानता से जीना है, मन से तरूण रहना है — गोरख बाला।

सो चेतना ग्यात से मुक्त होती है, निवड रहित, सहज, शुन्यता से होती है। बिनांणीं या विनांणीं यह बिनाण या विनाण, मतलब, विग्यान, वि- + ग्यान है। वि- = विशुद्ध, विशेष; ग्यान = ज्ञान, सूझ। सो अलख विग्यान का अर्थ है, निवड रहित, विशुद्ध ग्यान, और जो ऐसे जीये वह अलख विग्यानी है। इस प्रकार से योग व योगी की व्याख्या हमें

गोरखनाथ के शब्दों में मिलती है, अर्थात्, जोग अलख बिनाण "योग अलख विग्यानी" और, जोगी अलख बिनाणी "योगी अलख विग्यानी।"

Alakh = *a* + *lakh*. *A* means no, not, un-, free from; plus *lakh* (from *lakhanā*, to see, giving *lakh*, *lakhit*, *lakhā huā*, seen, having seen or known) and thus the seen, the known. In Sanskrit we have *a* + *lakṣya*. *Lakṣya* = aim, ideal, goal, something in the future, which is always on the basis of the known, the past. The *alakh* sense is to know the place and limit of the seen, the known, and is thus freedom from the seen, the known. It is to remain with the unknown, to live in youthfulness, consciously. In other words, it is to be open, to be a *bālā* – a *Gorakh Bālā*.

Awareness is thus free from the known, it is choiceless, effortless, it is emptiness.

Bināṇī or *vināṇī* is from *bināṇa* or *vināṇa*, that is, *vigyāna*, *vi* + *gyāna*, *vi* = pure, uncontaminated, *gyāna* or *gyān* = knowledge, wisdom. Thus *alakh vīgyān* means choiceless, pure knowledge, awareness, and whoever lives so is an *alakh vīgyānī*. And thus we have definitions of yoga and a yogi in Gorakhnath's words, viz. *Joga alakh bināṇ* "Yoga is *alakh vīgyān*" And, *Jogī alakh bināṇī* "A yogi is an *alakh vīgyānī*".



गोरख सबदी Gorakh Sabadi 28

भर्या ते थीर, झलझलंति आधा ।

सिधें सिध मिल्या रे अवधू, बोल्या अरु लाधा ॥

Those who are filled are calm,
the half-filled are in a flap,
siddha meets siddha, O Avadhu,
they talked and got something. (28)

अवधू एक महत्वपूर्ण योगिक शब्द प्रयोग है। अवधू यह अव- + धू ऐसे बना है। अव- अवश्य से है। अवश्य का शब्दशः अर्थ है आवश्यक, जरूरी; तथा यह भी कि जो वश में नहीं है, अनियंत्रित है। और अवधू में यह दोनों अर्थ परिलक्षित है।

ग्यान का संग्रहण दो प्रकार का होता है :

1. सामान्य ग्यान : भाषा, खेती, सायन्स, व्यापार, कला आदि।
2. चैतसिक ग्यान : अहंभाव, आसक्ति, लालच, भय, क्रोध, चिंता, तनाव, सहानुभूति, अनुराग आदि भाव-पवनां, तथा विश्वास, मान्यता। विश्वास, मान्यताओं से उनकी व्यर्थता समझकर छुटकारा तुरंत संभव है; बाकी अहंभाव भयानुरागादि द्रष्टा दृश्य की निर्जरा यह अलख संग्यान सूं ध्यान की अगनि में निरंतर प्रक्रिया है।

सामान्य वा सेक्युलर ग्यान अपने आप में कोई समस्या नहीं है, बल्कि यह हमारी जरूरत है; तथा यह सिखना, अद्यावत रखना जरूरी है। तथापि, चैतसिक ग्यान अनित्यता व अनिश्चितता के साथ अपनी गति से चलता है। चैतसिक ग्यान यह हमारे हर मानसिक, वाचिक व शारिरिक कृति में लिप्त रहता है, परिणाम करता है, और अपने आप को चलाते, बढ़ाते जाता है, जो हम होते हैं, अहं है। चैतसिक ग्यान का भव तथा इसकी निर्जरा क्या बात है, इसकी खोज व अंतर्समझ, मतलब, दरसण की अगनि में अहं केंद्र व इसके परिघ के अवधूनन की उमग, यह हमारी गरज है। और "धू" से इस निर्जरा का, ध्यान की अगनि में मन की सफाई वा अवधूनन का, निर्देशन है। ध्यान में यह आदर्श किसी काम का नहीं कि, आपका ध्यान सतत बने रहना चाहिए, कि जो निसर्गतः असंभव है। सहज गंभीर हो चेतना की भटकन के प्रति चेत जाना ही ध्यान में आना है, आते रहना है।

अवधू का अर्थ ध्यान करनेवाला, शून्यता से जीने वाला साधक भी है। सिद्धों के "अलख निरंजन अवधू!" इस प्रसिद्ध मूल सूत्र में अवधू यह अंतिम शब्द है।

निरंजन यह नि- + रंजन, निर- + अंजन, तथा नि- + रंज ऐसे है। नि, निर- = ना, रहित, un-, without; रंजन = रंग, रंगना, मनोरंजन; अंजन = मल, दाग, dirt; रंज = दुख। ध्यान यह निरंजन चेतना वा शक्ति है, जो बोधि का अपने आप से निःशेष सृजना

व चित्त का अवधूनन है, मतलब, भाव-पवनां काल-दुख अंत होते जाना है।

अर्थात्, इस सबमें अलख संग्यान आधारभूत है, जिससे मतलब है ग्यात की जगह व मर्यादा समझकर ग्यात से मुक्तता, जो सूझबूझ के साथ अजानता से जीना है, मन से तरूण रहना है। दुसरे शब्दों में, यह खुले रहना है, बाला होना है - गोरख बाला

अवधू व अवधूत यह दोनों शब्द संबंधित होते हुए भी इनके संग्यान में कुछ फर्क है। अवधू = खोजी या बोधि संग्यानी साधक, जो ध्यान साधना से चलते चित्त निर्जरित होते रहता है; अवधू या अवधूनन = ध्यान व चित्त निर्जरा की प्रक्रिया; तथा अवधूत = पूर्णतः निर्जरित चित्त, अरहत, निरवाणिक सिद्ध। अच्छा, यह भी कहा जा सकता है कि, निरवाण यह ध्यान की अग्नि में पल पल निर्जरा (emptying) है, और अवधू का सो निरवाण महत्वपूर्ण है।

ध्यान की सतत अग्नि में चित्त का तपना, उबलना व अवधूनन की अनुभूति सामान्यतः भाव-पवनां का पर्दा दर पर्दा फूलना व निर्जरित होना है। तथा कभी कभी जादातर सिर में, या शरीर में कहीं, टूटना, फूटना, विस्फोट होना, जैसे जोर से हवा चलना आदि के रूप में भी अवधूनन की, निर्जरा की, अनुभूति होती है।

Avadhū is a key yogic term, composed of *ava* + *dhū*. *Ava* comes from *avaśya*, which means essential, needed, and also unrestrained, uncontrolled. Both these meanings pertain to *avadhū*. *Dhū* stands for cleansing or emptying.

Avadhū and *avadhūt* are related, but have different senses. An *avadhū* is a seeker or an insightful meditator, who goes on emptying in the fire of observation, while an *avadhūt* is one whose consciousness is absolutely emptied. Thus, an *avadhūt* is an *arahat*, a nirvanic person.

We may distinguish two kinds of knowledge:

1. Mundane knowledge such as language, farming, science, trading, arts etc.
2. Psychological knowledge of feelings of “I”ness, attachment, greed, fear, affection, envy, sympathy, worry, anger, compassion, or other sensations and feelings (*bhāva-pavanā*).

Mundane knowledge is not a problem in itself, we need it; and it always has to be updated. However, psychological knowledge is unrestrained; it has its own movement in flux. It governs our every mental, vocal and physical action, and is capable of maintaining and multiplying itself, it is what we are. Enquiry and insight into becoming and the ending of this psychological knowledge, insight into fire of observation and the ending of the I centre and its periphery, is what is needed. *Dhū* stands for this cleansing or emptying.

Observation is meditation and emptying – the way of *nirvāṇa*. Further, we should understand that meditation does not mean having an unbroken continuity of observation, which is impossible by nature. Becoming aware of non-attention is itself attention.

Avadhū also means a meditator, one who meditates, lives emptiness. It is the last word of the famous declaration of siddhas, which is *Alakh Nirañjan Avadhū!*

Nirañjana is composed of *ni-* + *rañjana*, or *nir-* + *añjana*, or *ni-* + *rañja*. *Ni-* or *nir-* = no, not, un-, without,

and *rañjana* = colour, colouring, entertaining, *añjana* = taint, dirt, and *rañja* = pain, sorrow.

Attention is *nirañjana* energy, which is the awakening of *bodhi* from nowhere on its own, and emptying of our consciousness, that is, the ending of sorrow.

The *alakh* sense is the basis of all this, which is to know the place and limit of the seen, the known, and is thus freedom from the seen, the known. It is to remain with the unknown, to live in youthfulness (*bālā*), consciously. In other words, it is to be open, to be a *bālā* — a *Gorakh bālā*.



अस्ति जीये वह आस्तिक

धरम के नाम पर, चैतसिकतः, किताबी अधिकारीकता व अवलंबन मानसिकता (seeing books as authoritative and the associated mindset of dependency) तथा इश्वरनाम कल्पना, मतलब न + अस्ति = नास्ति, नास्तिक, नास्तिकता यह ग्यात, काल का परदा, कालांधता होती है।

अस्ति (आसति), अस्तिता, अस्तित्व मतलब तथता, वास्तव, यथाभूत सत्य, भाव-पवनां या वेदनां-भावनां, actuality, physical/present reality, sensations and feelings, what is, truth as it is. आस्तिक “वास्तव में जीने वाला”; आस्तिकता “वास्तविकता में जीने की कला” :

आसति छै हो पिंडता नासति नांहीं... — GB#201

(आसति है हो पंडिता नासति नांही... — JDP#211)

O pandits, What is is the way, not not is... — Gorakh.

अस्ति जीये वह आस्तिक —

अलख संग्यान सूं सिद्ध-बुद्ध सनातन धरम धारा।

सनातन मतलब कुदरतन, अपने आप से, विचार की पैदाइश नहीं, सार्वभौम, सार्वजनीन, eternal, laws of nature at all levels by itself. और धरम के सनातनता की बात बुद्ध बारिकि के साथ स्पष्ट रूप से करते है — "... एस धम्मो सनंतनो।"

देखे, किसी के मन में कब क्या विचार या भाव-पवनां उभरेंगे — डर, करुणा, क्रोध, व्याभिचार, धीरज, सूझ-बूझ आदि — यह निसर्गतः अनिश्चित है; इसके साथ जैसे भी होनेवाली कुशल अकुशल प्रतिक्रिया किसी भी आदमी के अपने हाथ में होने के साथ अनिश्चितता से है। तथा सिख के लिए खुले मन से होना ताउम्र की बात है; सत न्यास (foundation of truth) या सन्यास ताउम्र की बात है; जिम्मेदारी की समझ ताउम्र की बात है। सो किसी आदमी को तथाकथित रूप से किसी वर्ण या आश्रम का वा उच्च-नीच बताया जाना यह सब निसर्ग धरम के विपरित है, मानवीय गरिमा की समझ से रहित है, मनमुखी है।

अलख संग्यान मर्म है! अलख संग्यान से मतलब है ग्यात या विचार की जगह व मर्यादा समझकर ग्यात से, मतलब विचार गामिता से, मुक्तता, (भले मन में विचार शृंखला चलती हो या नहीं)। सो यह अजानता (innocence) से रहते यथाभूत सत के साथ, भाव-पवनां के साथ, पल पल कुशल पूर्वक दरसण (observation) से जीना है, जो शुन्यता है। हमारी चेतना का शुन्यता की तरफ विकसन या गहराना यह वैयक्तिकता से सामान्यता, व सामान्यता से शुन्यता, ऐसे है। अर्थात्, यह समझ काल सापेक्ष नहीं है, बल्कि आसति सत दरसण के साथ इसी पल में परिपूर्ण होती है, अलख संग्यान सूं ध्यान-बोधि में आरपार होती है। वैयक्तिकता से सामान्यता बाबत खलील गिब्रान की एक छोटी सी बात — “Your children are not your children. They are the sons and daughters of Life's longing for itself. आपके बच्चे आपके बच्चे नहीं है। वह जीवन गति के अपने संवेग के लड़के व लड़कियां है।” या कहें,

जीवन गति में बच्चे या आबादी के संतुलन आदि बाबत आपके विचार व कृति यह भी जीवन के अपने संवेग की आपके भीतर से गति है। सो जीवन गति में खाना, श्वास लेना आदि वैयक्तिकता के साथ आपके भीतर से सामान्यता व शुन्यता कैसे गतिमान होय यह अपने आप में खुले मन से देखने समझने की बात है।

अलख संग्यान (the *alakh* sense) सादी सरल बात है। जीवन गति की मूलभूत समझ के लिए, ध्यान-ग्यान के लिए, ग्यात या लक्ष्य से मुक्त रहते यथाभूत/अस्ति सत जीना जरूरी है। प्रत्यक्षतः वेदनां अर उनका अनित्य धरम ही अस्ति सत है; वेदनाओं के बगैर जिवंतता नहीं। वेदनां व ध्यान की एकसंघ गति को ऐसे समझे : प्यास, भूक, लघुशंका आदि दैनंदिन गरज वेदनां व यथा प्रतिसाद के साथ वेदनां दरसण, यह एक बात है; शरीर वा मन में उभरने वाली बीमारी के रूप में वेदनां व यथा उपचार के साथ वेदनां दरसण, यह दुसरी बात है; और सामान्य रूप से जागते सोते सतत उभरने वाली कोई भी वेदनां के साथ वेदनां दरसण, यह तीसरी बात है। इसमें वेदनां व परिस्थितियां सापेक्ष है; परंतु वेदनां या भाव-पवनां दरसण सामान्य है।

उभां बैठां सूतां लीजै, कबहुं चित भंग न कीजै... — गोरख।

सो जागते व सोते समय ध्यान करते ध्यान नींद में सहज प्रवेशित होता है। ऐसे ही शारिरिक मृत्यु में भी ध्यान प्रवेश सहज है। तथा आप यह भी अनुभूत करते हैं कि जागते हुए ध्यान करते मन कभी भटकता है; परंतु नींद में प्रवेशित ध्यान की गति, नींद टूटने तक, अपने आप सलग होती

है। सो निंद में, तथा शारीरिक मृत्यु में, ध्यान प्रवेश विशेष गहराई व विस्तार लिए गतिमान होता है, जो मानने की या विश्वास करने की बातें नहीं है। ध्यान की मूलभूत समझ के साथ ध्यान गामिता में अनेकों अंतर्समझ (insights) सहज जागती रहती है।

अलख संग्यानै अस्ति जीये वह आस्तिक वै स्वस्थ बा।

सो भाव-पवनां दरसण, चित्त अवधूनन, अत्ता ही अत्तनो नाथ बा॥

— सूरजनाथ।

सायन्स, गणित सहित सत धरम की बातों में शब्द व्याख्यायित होते हैं, निश्चित अर्थ से होते हैं। दुसरे शब्दों में, भाषा की अलंकारिकता, रूपकात्मकता होते हुए भी धरम देषना उलट-पुलट वा अनेक अर्थ करने की संभावना से नहीं होती। यदि धरम के नाम पर अनेक अर्थ होने की संभावना से बातों को लिखा गया है, भले इश्वर के नाम पर या जैसे भी, तो स्पष्ट है कि वह धार्मिक किताबें ना होकर कुछ और हैं।

धरमनाम अहं आस — कथा मान्यता बहुतै,

धरमनाम भक्ति मंत्र तंत्र — अंधता बहुतै।

धरमनाम धंधा रंजन — बहु दिखावे करै,

धरमनाम बहम होत — वृथा तोष मरै॥ — सूरजनाथ।

सिद्ध बुद्ध संग्यान यह ध्यान ग्यान सूं सत धरम पथ है, समझने के लिए मुश्किल नहीं है। सो सिद्धों के साथ सूझबूझ सूं- सूरजनाथ कहता है — “अलख संग्यान अर जत सत, जन जन जानें, जीयें”।

WHOEVER LIVES WHAT IS IS *ĀSTIK*

Seeing books as authoritative and the associated mindset of dependency in the name of religion or having positive or negative ideas in the name of God, all this is being in the known, which is *na + asti = nāsti, nāstik, nāstikatā*. It is being coloured and blinded by time. *Asti (āsati), astitā, astitva* means actuality, truth as it is, physical or present reality, what is, sensations and feelings. *Āstik* = one who lives with what is. *āstikatā* = the art of living with what is.

āsati chai ho piṇḍatā nāsati nāhī...

O pandits, what is is the way, not not is...

— Gorakh, #201.

Whoever lives what he or she is is *āstik* —

With the *alakh* sense, Siddhas and Buddhas speak of religion that is *sanātan*.

Sanātan means eternal, naturally existing, by itself, not produced by thought, universal, omnipresent, laws of nature at all levels by itself. Buddha speaks of the religion that is *sanātan* minutely in details — “... *esa dhammo sanantano.*, ... this is eternal religion.”

Look, what thoughts and feelings will come up in somebody's mind — fear, mercy, lust, boldness, thoughtfulness etc. — this is uncertain by nature. Then, whatever to respond or react to, skillfully or not so, to what is being felt is in one's own hands but even then it is uncertain. Further, to be open to learning is a lifelong thing; foundation of truth or *sannyās* is a lifelong thing; sense of responsibility is a lifelong thing. Therefore, to

call someone as belonging to a particular *varna* or caste or as having been born high or low is being racist. It is against the religious law of nature, is devoid of the sense of human dignity and is thought projected (*mana mukhi*).

The *alakh* sense is the essence of our enquiry into thought and time. The *alakh* sense means freedom from the seen by knowing its place in daily life and its limit otherwise. That is, the *alakh* sense is freedom from going by the known, despite chattering in the mind, that is, intruding thoughts. Thus, the *alakh* sense is to live with innocence and observation of what is happening psychologically, which itself is emptiness. In this the deepening of our consciousness is from individuality to generality and from generality to emptiness. Of course, this deepening or understanding is not time bound or relative, but it is complete in this moment with observation of what is, it is transparent with the *alakh* sense and *dhyān-bodhi*. *Dhyān-bodhi* means observation or meditation in which there is the awakening of *bodhi* or intelligence on its own and so the emptying of consciousness.

Regarding individuality to generality, Khalil Gibran says: “Your children are not your children. They are the sons and daughters of Life’s longing for itself.” Or say, your thoughts about producing children and balance of population etc. are things of Life’s longing for itself through you. Thus, with the individuality of breathing, taking food etc., how the generality and emptiness are to flow within you consciously is to be seen and understood with openness.

The *alakh* sense is a simple thing. For the understanding of fundamental things in the movement of life, for the

understanding of meditation and virtue, it is essential that we live by the *alakh* sense and observation of what is. In fact, the movement of sensations and their impermanence is what is; there is no life without sensations. Understand the oneness or wholeness of the sensational movement and their observation as follows: Sensations like hunger, thirst, urinating etc., of a needful nature, and meeting with them while observing sensations involved is one thing. Sensations of sickness arising in the body or mind, and treating them with medication, while observing sensations involved, this is another thing. The arising of sensations in general, while awake or in sleep, and observing them then, this is yet another thing. Here sensations and situations are relative, however observation of sensations or feelings-sensations are common things.

ūbhāṁ baiṭhā sūṭā lījai, kabahū cita bhanga na kījai...

Behold while standing, sitting, sleeping,

Don't ever break awareness...

— Gorakh, #177.

Thus, meditating while awake and when going to sleep, meditation enters into sleep on its own automatically - so is the entrance of meditation into our physical death by itself naturally. Further, you notice that while awake and meditating your mind wanders many times, but once meditation is entered into sleep it remains continuous until you wake up. That is, meditation entered into sleep goes on being deeper and wider by itself, which is not something to be accepted blindly or believed. With insight into meditation, which is fundamental, and so remaining meditating, very many insights go awakening naturally.

Truly — whoever lives with the *alakh* sense,
observing what is, he or she is *āstik* and healthy.
Thus, observation of feelings and sensations is
cleansing of the mind, and you really are your own master.

— Surajnath.

Words are defined and precise in the language of science, mathematics, including religion. In other words, even when there is metaphorical language in the matter of religion, generally it does not go with possibilities of taking different meanings from what is said. In case things in the name of religion are put with possibilities of interpreting them differently, maybe in the name of God or whatever, then clearly those texts are not rightly religious ones.

Ego and desire in the name of religion –
many myths and beliefs,
bhakti, mantras, tantras in the name of religion –
lot of blindness,
business, entertaining in the name of religion –
doing many showy things,
being deluded in the name of religion –
dies with false contentment.

The sense of Siddhas and Buddhas, with meditation and wisdom, is the right religious way, and it is not difficult to understand. Thus, by understanding things, along with Siddhas, Surajnath says, “let people know the way of the *alakh* sense, of meditation and virtue.”

गोरख सबदी Gorakh Sabadi 201

आसति छै हो पिंडता नासति नांहीं, अनभै होय परतीति
निरंतरि माहीं।

ग्यान षोजि अमे बिग्यांन पाया, सति सति भाषंत सिध सति
नाथ राया॥

O pandits, what is is the way, not not is.
Non-stop practice, wake up, be fearless –
searching for knowledge we found pure knowledge.
It's true, it's true, says Siddha Sat Nath Ray. (201)

In line 1, *chai* means "is". JDP#211 reads this line as *āsati hai ho paṇḍitā nāsati nāñhī*. This is made clear, as some readers mistakenly take *chai* to mean "six".

लाइन 1, छै = है।



चेहरा : FACE

कुदरत ने चेहरा,
औरत अर मर्द का,
सारी इंद्रियों के साथ,
संबंध का आइना रखा है,
ठंडी गर्मी सहे ऐसा बनाया है,
परदा करने के लिए नहीं बनाया है।

Our face, by nature,
Be of a woman or man,
Along with the sense organs,
Goes as a mirror of relationship,
Capable to bear more cold and heat,
Normally, it is not made to cover or hide.



संबंध का आइना व सम्यक सम्मान

कोई दो व्यक्ति एक दूसरे के सामने आने से, वह दोनों एक दूसरे की आंखों में या चेहरे में पलभर के लिए सहज नजर डालें यह एक दूजे का दरसण है, जो महत्वपूर्ण है; और दोनों की या किसी एक की नजर पलभर के लिए जमीन की तरफ झुके, या पलके व गर्दन थोड़ी सी झुके, यह सम्मान है। संबंध के आइने में एक-दूजे का दरसण व सम्मान, सहजता व मानवीय गरिमा के साथ, ऐसी सादी बात है। आगे, नमन, आदेश आदि कहना या सम्मान में हाथ जोड़ना वा मिलाना भी ऐसे सादी बात है।

मिलने वाले दोनों मानुस होते ये कौन तत्व है जिन्हें अहंगंड में उलझते, धर्माधिकारीता का ढोंग करते, मानवीय गरिमा की अवमानना करते, अपने पांव पुजवाना या अपनी परंपरा के खातिर वकालत करते किसी के पांव पूजना, या ऐसी बातें यहां वहां घुसा देना, interpolate करना, अच्छा लगता है? — सजगता के साथ यह देखना समझना कोई बात है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष वा चेतन अवचेतन रूप से, संबंधात्मक समाज गति में, गलत वा अवमानना कारक प्रथा परंपराएं ना चले इसके लिए हम जिम्मेदार हैं।

गोरखनाथ व नाथ सिद्धों की एक दुसरे को आदेश वा नमन या सम्मान करने बाबत साफ देषना है कि, आदेश करनेवाला व जिसे ये किया जाता है वह, ये दोनों पलभर के लिए एक दुसरे से सीधी नजर मिलाते है जो दरसण है, और फिर आदेश करनेवाला या दोनों अपनी पलकें या थोड़ा

सर झुकाएं जमीन की तरफ देखते हैं जो सम्मान है। यह दरसण व आदेश वा नमन का सहज सम्यक संयोजन है। नाथ संग्यान में किसी ने किसी के पांव छूना, पूजना, ज्यादा झुकना जैसी बातों को हीन समझा जाता है, मानवीय गरिमा की अवमानना कारक प्रथाओं में देखा जाता है।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 91

अलेष लेषंत अदेष देषंत, अरस परस ते दरस जांणीं ।
सुनि गरजंत बाजंत नाद, अलेष लेषंत ते निज प्रवांणीं ॥

Write the unwritten, see the unseen,
darshanis know through actual contact.
The nād resounds and thunders in the emptiness,
knowers of the self write the unwritten. (91)

जो भी दरसण (दर्शन) से जीता है, अलख संग्यान सूं आसति दरसण से जीता है, वह दरसणी है, ध्यान-ग्यान संग्यानी है। नाथ पंथ में दरसण व दरसणी वा दर्शन व दर्शनी यह प्रसिद्ध शब्द प्रयोग हैं, जो ध्यान-ग्यान संग्यानी साधू अर सज्जन के लिए प्रयोग किया जाता है।

Whoever lives by observation, with the *alakh* sense, he or she is a *darshani*, one having insight into meditation. *Darasana* and *darasani* or *darshan* and *darshani* are famous phrases in the Nath *Panth*.



MIRROR OF RELATIONSHIP AND BEING RESPECTFUL

Gorakhnath and Nath Siddhas give us clear guidelines about respecting each other. When two persons come face to face both should look directly into each other's eyes or face for a moment, which is a *darshan* or observation, that is, meeting each other. The one who salutes (or both) lowers his eyelids and head slightly and gazes towards the earth as gestures of respect.

Observing and respecting each other in the mirror of relationship, with the sense of human dignity, is such a simple thing. Further, shaking or folding hands in mutually offering each other respect or saluting is likewise simple. This is an easy combination of observing and wishing each other when they come together, which is important.

When meeting with each other — both being humans who are those egoists and hypocrites — they are committing an injustice towards human dignity. They like their feet to be touched or worshiped by others, or they are advocating that someone's feet be respected to maintain a tradition, or they somehow interpolate such things here or there. It is important to be alert and to notice and check such things. We should be responsible in the course of relationships to see that there not be a continuation of such traditions which are not in harmony with human dignity. To bow down before someone and touching or worshiping their feet and such is seen as an insult to human dignity in the Nath school.

सत सनातन, नकली सनातन, आस्तिक, नास्तिक, भगवान व मोमिन का सच

अस्ति जीये वह आस्तिक :

अलख संग्यान सूं सिद्ध-बुद्ध सनातन धरम धारा।

वैदिक-पुरानादि नास्तिक :

ग्यात संग्यान सूं किताबी कालांध धर्मांध परंपरा॥

सनातन = कुदरतन, अपने आप से, विचार की पैदाइश नहीं, eternal, laws of nature by itself, सार्वजनीन, सार्वभौम। सनातन धरम की बात बुद्ध बारिकि के साथ अनेकों बार करते है। उदाहरण के लिए —

न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीधा कुदचनम्।

अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनंतनो॥ — बुद्ध।

सनातन, भगवान शब्दों बाबत जाने कि, ये बुद्ध ने गढे व व्याख्यायित कर इस्तेमाल किये हैं। वेदों को इनका पता नहीं हैं। अलख, निरंजन, अवधू यह शब्द भी वेदों में नहीं है।

भग्ग रागो भग्ग दोसो भग्ग मोहो अनासवो।

भग्गस्स पापका धम्मा भगवा तेन उच्चति॥ — बुद्ध।

भग्ग + वान से भगवा, भगवान इति।

देखे, सारे वेदों में, केवल ऋग्वेद में एक बार "भगवान" शब्द आया है (10/60/12), वह भी भाग्यवान (lucky) के अर्थ में; तृष्णा के जलने (भग्ग + वान) के अर्थ में नहीं। व आखिरी अथर्ववेद (भाष्य) में एक बार सनातन शब्द आया है। सो प्रोपागंडा के पिछे के सत-असत को जाने कि, वर्णाश्रम, उच्च निचता, पाप पुण्य योनी आदि बुद्धिभ्रम करनेवाली, मांत्रिक तांत्रिक कर्मकांडी, लोक परलोक आस के साथ विचार की पैदाइश, कालांध वैदिक परंपरा, जिसमें मानवीय गरिमा की अवमानना है, कब व कैसे सनातन हो गयी? और अब हिंदू? इसके साथ यह भी समझे की विचार की पैदाइश कोई भी संकल्पना, मत-मान्यता, मंत्र-तंत्र, धरमनाम कर्मकांड आदि पर, इसमें कुछ भी कालातीत नहीं होने से, तुरंत ही कुदरती धरम के काल-गामि नियम अपने आप से लागू होते हैं, इसका मतलब यह नहीं कि ऐसे कुदरती नियम लागू होने से ये विचार पैदाइश धरमनाम परंपरा भी सनातन हो जाती है। दुसरे शब्दों में, अस्तित्वगत धरम की सनातनता यह एक बात है, ये विचार पर किसी भी तरह से निर्भर नहीं हैं; और विचार पैदाइश धरमनाम परंपराएं यह मूलतः अलग बात है, जिनकी विचार के परे कभी कोई सच्चाई नहीं, अस्तित्व नहीं, ये सनातन नहीं।

"अलख निरंजन अवधू!" यह नाथ सिद्ध पंथ का (स्कूल का) तीन-रतन है, मौलिक सूत्र है। तथा इसके संकेत के रूप में तीन-रतन या त्रि-रत्न का प्रतीक धूनी के साथ स्थापित किया जाता रहा है; जिसे काल गति में,

कुछ विचित्र प्रचार के तहत, त्रि-शूल या शिव-शंकर का हथियार कहा जाने लगा जो एक मनमुखी है। सो शिव-शंकरादि त्रिशूल की मनमुखी में इसे हथियार मानते हुए कुछ साधू एवं आम जन मूढ़ता में हैं, दुख अग्यान में है। अलख निरंजन अवधू! — यह ऐसा ही तीन-रतन या ती-रतन सूत्र है जैसे बुद्ध स्कूल में "शील समाधि प्रग्या!" है। अर्थात्, कोई भी शब्द या प्रतीक अपने आप में कभी भी सत नहीं होते, बल्कि सत का सही या गलत निर्देश मात्र होते हैं। सत सम्यक रूप से चेतन चले यह हमारी सातत्यपूर्ण जिम्मेदारी है।

समझ स्त्री वा पुरुष नहीं होती, हिजड़ा भी नहीं होती; समझ का लिंग, वर्ण, जाति नहीं होती; समझ खुले जेहन में सहज खुलती है; सो साधू अर सज्जन की कोई जात, वर्ण, धर्मनाम परंपरा नहीं होती, नहीं हो सकती।

अस्ति (आसति), अस्तित्ता, अस्तित्व, आस्तिक, आस्तिकता यह सब एक ही मूल से है। आस्तिक = तथता से जीनेवाला; यथाभूत सत, भाव-पवनां या वेदनां-भावनां, actuality से जीने वाला।

आस्तिकता = वास्तविक सत के साथ जीने की कला, अलख संग्यान सूं भाव-पवनां दरसण ध्यान की सम्यक समझ।

धर्म वा इश्वर के नाम पर कल्पनाएं यह न + अस्ति > नास्ति > नास्तिक > नास्तिकता है, ग्यात (the known) है, जो काल परदा की मानसिक अंधता होती है। मतलब, पेड़ का प्रत्यक्ष देखा जाना यह वास्तविक सत है; और पेड़ की याददाश्त या विचार यह काल्पनिक सत है, जिसकी

दुनियादारी में अपनी जगह है। विचार में डिजाइन करने की क्षमता है; पर ऐसे ना हो कि विचार इश्वर या धरम पथ डिजाइन करने लगे।

"आसति छै हो पिंडता नासति नाहीं. . ." GB#201.

(आसति है हो पंडिता नासति नाहीं। JDP#211)

"O pandits, What is is the way, not not is. . ."

— गोरख।

विडंबना है कि आत्मा-परमात्मा की संकल्पनाओं को साइड करने वाले भगवान बुद्ध को यहां महात्मा कहते हैं, अर विष्णु शंकर रामादि मनमुखी देवताओं को भगवान।

अलख (संग्यान) = अ- (no, not, un-, without) + लख (लखना, to see, सो लख, लखा हुआ) देखा हुआ, मतलब, ग्यात। ग्यात/विचार की जगह व मर्यादा को समझकर ग्यात से मुक्तता, (भले मन में विचार शृंखला चलती हो या नहीं), सो अजानता से रहना, व यथाभूत सत का, भाव-पवनां का, दर्शन यह चैतसिक शुन्यता होती है। अलख संग्यान यह ऐसी ध्यान-ग्यान समाई सादी सरल बात है।

आसति (अस्ति) जीये वह अत्ता ही अत्तनो नाथ होता/ती है, आस्तिक होत है। वैदिक जैसे ही नित्य, अमर आत्मा आदि ग्यात लेकर चलने वाले जैन तिर्थंकर कैसे नाथ व सिद्ध है?

अस्ति जैसे मीम व मोमिन अरबी मूल से है, जिसका मतलब है हकीकत से जीना, कयामती खुदा जैसी बातों में उलझना नहीं। सो मोमिन होना

यह बोधि धरम से जीने की कला है। मगर जैसे अस्ति जीये सम्यक आस्तिक बुद्ध को झूठमूठ नास्तिक, महात्मा प्रचारित करते है, सो धरम के नाम पर किताबी अधिकारिकता व अवलंबन मानसिकता की अंधता लिए कुरानी को अब उल्टे मोमिन कहते है — विडंबना है।

अलख संग्यानै अस्ति जीये वह आस्तिक वै स्वस्थ बा।

सो भाव-पवनां दरसण, चित्त अवधूनन, अत्ता ही अत्तनो नाथ बा॥

— सूरजनाथ।



TRUTH OF RIGHT *SANĀTAN*, FAKE *SANĀTAN*, *ĀSTIK*, *NĀSTIK*, *BHAGAVĀN* AND *MOMIN*

Whoever lives what is — he or she is *āstik*. With the *alakh* sense Siddhas and Buddhas speak of religion that is *sanātan*. *Vedics-Puranics* are *nāstik*: with the known sense, and these are traditions that are blinded by time with books as authority.

Sanātan = which is by nature, not produced by thought, eternal, laws of nature by itself, universal, omnipresent. And Buddha speaks of the religion that is *sanantan* or *sanātan*. For example —

na hi verena verāṇi, sammantīdhā kudacanam
averena ca sammanti, esa dhammo sanantano

Hatred is never appeased by hatred in this world.

By non-hatred alone is hatred appeased.

This is an eternal law.

— Buddha, Dhammapada 5.

Know that the words *sanātan* and *bhagavān* are coined and defined by the Buddha. The *Vedas* do not know these words in fact. The words *alakh*, *nirañjan*, *avadhū* are also not found in the *Vedas*.

bhagga rāgo bhagga doso bhagga moho anāsavo
bhaggassa pāpa kā dhammā, bhagavā tena uccati

Attraction is burned, aversion is burned,

delusion is burned,

burned are the dhammas of sinfulness —

he is called a bhagavā (bhagavān). — Buddha.

Thus, as said in the above quote from the Buddha, *bhagavā* and *bhagavān* are by the burning of desire in the fire of observation, meditation.

Look, in all of the *Vedas*, the word *bhagavān* occurs once in the *Rigveda* in the sense of being “lucky”, and not in the sense of the burning of desire. Further, the word *sanātan* occurs once in the last *Veda*, that is, the *Atharva Veda* (*bhāṣya*).

Thus, know that the *Vedic* tradition, (which is based on ideas of *Varnāśram* of high and low births, dividing human beings and insulting human dignity) is ritualistic with *mantras* and *tantras*, with desire for this and the other worlds, so-called *svargas* or heavens. So being a product of thought in the name of religion blinded by time, how does the *Vedic* tradition come to be *sanātan* and now Hindu?

Understanding is neither man nor woman, it is not even eunuch. It is free of gender, *varnāśram*, caste, race; understanding flowers in an open mind and enquiring mind. So *sādhūs* and *sajjans* do not belong to any caste, race, religious tradition — they can’t have these.

Asti, (*āsati*), *astitā*, *astitva*, *āstik*, *āstikatā* = all these are from the same root, that is, from *asti*.

Āstik = one who lives with what is, actuality, with sensations or feelings-sensations, with skill and diligence.

Āstikatā = the art of living with what is, the understanding and skill of observation of the stream of feelings-sensations, that is, meditation.

Ideas in the name of religion or God, that is, *na+asti > nāsti* (*nā sati*) > *nāstik* > *nāstikatā*, are the known — it's a curtain of time that blinds us psychologically. In other words, looking at a tree directly is actuality, it is being *āstik*; and the memory of or thoughts about a tree is *na + asti*, — it is not actuality of observing a tree, though memory and thinking has its place in daily life. That is, thought has the capacity of designing things, but this does not mean that thought should design God or ways in the name of religion. This is a matter of common sense to understand.

āsati chai ho piṇḍatā nāsati nāhī... GB#201.

āsati hai ho paṇḍitā nāsati nāhī... JDP#211.

O pandits, what is is the way, not not is.

— Gorakh.

It's a pity that the Buddha, who rejected all ideas about *ātmā* as timelessness and of *Paramātmā* or God, is called a *mahātmā* (a great *ātmā*); and those thought projected (*mana mukhi*) gods like Rama, Vishnu, Shankar etc. are called *bhagavān*. What a farce!

Alakh = *a* + *lakh*. *A* means no, not, un-, free from; plus *lakh* (from *lakhanā*, to see, giving *lakh*, *lakhit*, *lakhā huā*, seen, having seen or known) and thus the seen, the known. The *alakh* sense is to know the place and limit of the seen, the known, and is thus freedom from the seen, the known, despite chattering. It is to remain with the unknown, to live in youthfulness, consciously. In other words, it is to be open, to be a *bālā* – a Gorakh *Bālā*. Awareness is thus free from the known, it is choiceless, effortless, observing what is,

it is emptiness. The *alakh* sense is a simple thing, and it implies meditation.

Whoever lives what is, with freedom from the known, he really is his own master (Nath), is *āstik*. Like *Vedics*, the Jain *tirthankaras* go with the known of permanent *ātmā* etc. That is, living so with the known, what kind of Siddhas and Naths are those Jain *tirthankaras*?

Like *asti*, *mīm* and *momin*, from the Arabic or Sufi origin, mean actuality, present or physical reality, one who lives with what is. It does not mean to be involved with ideas like *Khudā*, *Qayāmat* and so on. That is, being a *momin* is the art of living the religion of *Bodhi*, intelligence. However, as the Buddha, who lives with what is, is falsely called as *nāstik*, *mahātmā*, *avatār* by the *Vedic* elements. Likewise, those who are attached to the authority of *Quran* and live with dependence on ideas in the name of religion are falsely called as *momins* in the Islamic world — it's an irony. Truly — whoever lives with the *alakh* sense, observing what is, he or she is *āstik* and healthy. Thus, observation of feelings and sensations is a cleansing of the mind, and you really are your own master.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 3

इहां ही आछै इहां ही अलोप, इहां ही रचिलै तीनि त्रिलोक ।
आछै संगै रहै जू वा, ता कारणि अनंत सिधा जोगेस्वर हूवा ॥

Here is what is, here the invisible,
here the three worlds are created;
so be open and stay with what is,
that's how untold siddhas became Yogeshvaras. (3)

आछै (*āchai*), आछत, आछना, अछ-, आछ-, छै, अछै, आछै
मतलब/ means है, to be, that which is, what is, जो है। वा (*vā*)
means open, (again, that, or) (Callewaert 2009 and McGregor 1995).

तीनि त्रिलोक से यह समझ है कि, विचार-तृष्णा जगत, शरीर-मानस
जगत जिसका विचार-तृष्णा जगत यह हिस्सा है, और बसती के रूप में
जगत की समग्रता, जिसके विचार-तृष्णा व शरीर-मानस यह हिस्सा है।
यह तीनों अभिन्न है, लौकिक है, और कालगामिता से है। यही आसति
सत है, आछै या वास्तविक है। जीव जगत है वा पिंड ब्रह्मांड है, जीव
जगत का हिस्सा है, और जगत हमारे भीतर है। दरसन की अगनि में,
शून्यता के जगने से, पिंड का अवधूनन यह पिंड व जगत या लोकों का
चैतसिक परावर्तन व निर्जरा है।

The three worlds, *tīni triloka*, are understood as the world of thought-desire, the world of the body-mind of which thought-desire is a part, and the world as manifesting as a whole, of which thought-desire and body-mind are parts. These three are inseparable, and are temporal, they exist in time. This is what is (*āchai*). You (*pinda*) are the world (*brahmānda*), a part of the world, and the world is in you. The emptying of the pinda, in the fire of observation, with the awakening of *śunya* or emptiness, is the transformation and ending of you and the worlds or *lokas*.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 8

हसिबा षेंलिबा धरिबा ध्यांन, अहनिसि कथिबा ब्रह्म ग्यांन ।
हसै षेलै न करै मन भंग, ते निहचल सदा नाथ कै संग ॥

Laugh, play, and keep meditating,
day and night declare the divine wisdom.
Laughing and playing, don't divert your mind,
motionless, always in the company of Nath. (8)



साधू दीक्षा

साधू-दीक्षा आदमी की होती है, किसी जानवर, देवता या पिशाच की नहीं।

नाथ पंथ में साधना का स्वातंत्र्य होने से अपने प्रायवसी में, अपने निजी स्थान में, कौन क्या करता है यह अलग बात है। फिर भी गोरख के बाने में कोई अलख विग्यान के बजाय, ध्यान-ग्यान संग्यान की मूलभूत देषना को महत्व देने के बजाय, कुछ मनमुखी बातें चलता है, छद्म रूप में आत्मा-परमात्मा, आदिनाथ वा हिरण्यगर्भ आदि किसी परंपरा का धरमनाम जंजाल घुसाता, चलाता है, तो यह उजागर होते रहे यह जरूरी है। पर लालची नेता, बहके बाबा/महाराज, चालाक पंडित अर भ्रमित जन — क्या कहे!

बीरबंक या बंदरनाथ यह तथाकथित राम भक्त हनुमान के नाम पर भक्ति-मुक्ति के रूप में एक मनमुखी व विचार पोषित बात है। उपर से माथे पर शैवादि परंपरा का आडा-टेढ़ा-खड़ा गंध लगाएं, नाथ पंथ में घुसाये चलाये, पात्र हैं ये सब। ऐसे ही तथाकथित गजकंथडनाथ वा हाथी-देवता आदि हैं। अर्थात्, जीव-जगत दया-करुणा यह अलग बात है।

"शिव गोरख" से मतलब है कारुणिक गोरख, बस्। गोरख अर नाथ यह शैव, वैष्णव नहीं है, हिंदू, मुस्लिम नहीं है।

श्री गोरषनाथ पंथ का देव, अनंत सिद्धां मिल पाया भेव।

पाया भेव अर पाइ प्रतीत, अनंत सिद्धां मै गोरष अतीत।।

— घोडाचोलीनाथ, गुरु मत्स्येंद्रनाथ जी।

गोरखनाथ की "सबदी", गोरख के शब्दों में, अलख विग्यान अर ध्यान-ग्यान दीप देषना के साथ, ऐसी बातों पर करारा प्रहार भी है।



INITIATION TO BE A *SĀDHŪ*

Initiation to become a *sādhū* is for humans and not for animals, gods and ghosts.

There is freedom of enquiry in the Nath *Panth*, so what one does in private is another matter. Even then, if some *sādhū* in the disguise of a Nath yogi, or anyone, tries to insert so-called animal gods as Nath *sādhūs* etc., then it needs to be checked and exposed. However, there are greedy politicians, strayed *sādhūs*, clever-bird pandits and deluded people. What a pity!

Birabanknath, Bandarnath, or a monkey god as a Nath, is from a character as a devotee of Rama, which is projected and maintained by thought (*mana mukhi*) — and it has no reality apart from thought. Look into pictures which are coloured with horizontal or vertical sectarian marks of *Shaiva* or *Vaishnav* ideas on their foreheads and being interpolated into the Nath *Panth*. Gajakanthadnath or elephant god (so called Ganesh or Ganapati) is also the same false stuff. Well,

compassion towards any beings or animals is altogether a different thing.

Shiva literally means loving, auspiciousness, merciful or compassionate. Thus, "*Shiva Gorakh*" means compassionate Gorakh. That's all. Gorakh and Naths are neither *Shaiva* nor *Vaishnava*, neither Hindu nor Muslim. Ghodacholi Nath, a disciple of Dada guru Matsyendra Nath ji, says that Gorakh is the prime person or Godhead of the Nath *Panth*, and this is declared by Siddhas together. Gorakh Sabadis reject and strike hard on *mana mukhi* things like elephant god, monkey god or Brahma, Vishnu, Mahesh and so on.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 307

ऐसी बात करूं जे कोई मरै, गोरख बोलै मेर जाहां झरै ।
बैठा सूता जान न देही, नाथ कहै पूता अचिरज लेही ॥

Let me speak so that somebody die.
Gorakh speaks,
a cascade from a mountain peak.
Don't miss it while sitting, sleeping,
Nath says, son, behold the wonder. (307)



आदेश, अभिवादन का बोध

नाथ पंथ में आदेश वा आदेस इस शब्द का प्रयोग एक दूजे का अभिवादन करने के लिए किया जाता है, जैसे नमन, सलाम, जुले (juley), Hi, Good Day आदि। भेग भगवान में सम्यक गुरु समझाते हैं, दादा गुरु मछिंद्रनाथ कहते हैं —

मछिंद्र :

अवधू आदेस का अनूषम उपदेस, सुंनि का निरंतर बास।

सबद का परचा गुरु, कथंत मछिंद्र नाथ॥ 6॥

— गोरख-बानी, मछिंद्र गोरखबोध।

अनूषम (अणु सुक्ष्म), मतलब महीन, atomic subtle, fine या बहुत सुक्ष्म, कि जो जीवन की तथ्यता है, जिसे हम जैसे हैं वैसे प्रतीत कर सकते हैं, जिसे अनुभूत करते आसति (अस्ति) संग्यान सूं जी सकते हैं। जीवन प्रवाह की मूलभूत, अणु सुक्ष्म व प्रत्यक्ष बातें हैं वेदनां, नाद, तरंग, कि जिन्हें सबद भी कहा जाता है। और इनके परे का पार सत या शुन्यता (बोधि) भी अलख संग्यान सूं वेदनां, नाद, तरंगों के साथ पल पल चेतन जीने में, परिचित रहने में, अपने आप से जागता है, अन्यथा उसके जागने की संभावना नहीं। सत धरम की बात विश्वास करने की नहीं होती, खोजी बनकर जानने की होती है। उपदेस का अर्थ है सतसंग, dialogue, सत की बात करना, सत के साथ एकरूप जीना। सो वेदनां वा नाद तरंगों के साथ, आसति सत के साथ, चेतन जीना आदेस का अनूषम उपदेस है।

मतलब, आदेस या आदेश यह शब्द ध्यान का निर्देशन है। यह एक दूसरे को सम्मान देने-लेने के साथ ध्यान चेतना को खुद जगना व सामने वाले को इसकी याद दिलाते रहना है।

आदेश का अर्थ अनुशासन (order), संतुलन (harmony), नियमन (command), तथा नाथ होना (mastery) है। कुदरत अपने आप में आदेश है, संतुलन व मास्टरी है। निसर्ग में सुबह, दोपहर, शाम आदि होते हुए भी भूत व भविष्य नहीं होते, सिर्फ वर्तमानता वा कालातीतता होती है। हमारे दैनंदिनी में विचार की अपनी जगह है, जो भूत-भविष्य की बात है; और ध्यान यह वर्तमान या कालातीतता से जीने की कला है।

सिद्धों की शब्दावली (terminology) अलख विग्यानी है। यह कल्पना रमण वा मनमुखी बातें नहीं है; किसी विशिष्ट मानुस, आदर्श वा मान्यतां को महत्व देते हुए व्यक्ति वा किताबी अधिकारिकता से होना नहीं है; और यह समझना महत्वपूर्ण है। तथा यह समझना भी जरूरी है कि, धरम के नाम पर किताबी अधिकारिकता वाले, सो मानसिक कंडिशनिंग में जीने वाले बुद्धिजीवी, पुरोहित आदि, सिद्धों-बुद्धों के शब्दों को हाइजैक कर, उनके साथ अपनी मान्यता की झूठमूठ बातें जोड़ कर, आत्मा, परमात्मादि अहंतोषी कल्पनाओं में उलझाकर, अन्यथा प्रचारित करते रहते हैं। उदाहरण के लिए, सिद्ध सिद्धांत पद्धति इस पुस्तक में, जो गोरक्षनाथ के नाम पर बाद में लिखी गयी है, आदेश यह शब्द आत्मा

व परमात्मा के ऐक्य (अहं ब्रह्मास्मि) का वाचक आदि गलत तरह से कहा गया है। खोजी साधक वा सिद्ध झूठ को समझते, पर्दाफाश कर साइड करते, सत का अलख जगाते चलते हैं।

अधिक तत्त ते गुरू बोलिये, हींण तत ते चेला।

मन मानै तौ संगि रमौ, नहीं तौ रमौ अकेला॥ 161॥ — गोरखा।

ध्यान यह आदेश है, अनुशासन, संतुलन, नियमन व नाथपन है, मास्टरी है।

नमन = न- + मन, ग्यात से मुक्त हो अजानता से एक दूजे का सम्मान करना, to wish with no mind, no past.

सलाम = सलामती, security, secure; ध्यान सलामती है।

Good Day = expressing good wishes on meeting or parting during the day. ध्यान goodness है।

जुले या जूले यह लद्दाखी मूल का ऐसा ही सहज अभिवादन है।

दुसरी बात यह कि, नाथ पंथ में जब एक दूजे के सामने हो आदेश, नमन, सम्मान, saluting करते हैं, तब दोनों पलभर के लिए सहज एक दुसरे के आंखों में सीधे देखते हैं, कि जो महत्वपूर्ण है, आवश्यक है, जिसे दरसन कहा जाता है। फिर नमन करनेवाला, या दोनों, थोडा सिर झुकाकर सहज जमीन की तरफ पलभर के लिए देखते हैं। बाकी हाथों की कोई मुद्रा आदि हो ना हो, या नादी आदेश, अलग बातें हैं। कहने की जरूरत नहीं कि, नाथ पंथ में किसी ने किसी के पांव छूना, काफी कुछ झुकना

यह अच्छा नहीं माना जाता। जैसे कि सिद्ध कहते हैं, किसी ने किसी के पैर छूना मानुसपन के लिए अशोभनीय है, मानवीय गरिमा की अवमानना है।

आदेश बोध, नाथ तत्त, यह नाम धारण बात नहीं।

अलख संग्यान, ध्यान ग्यान, पथ जीये नाथ होई॥

— योगी सूरजनाथ।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 66

बिरला जाणंति भेदांनिभेद, बिरला जाणंति दोइ पष छेद ।
बिरला जाणंति अकथ कहानीं, बिरला जाणंति सुधि बुधि
की बानीं ॥

They are rare who know difference and non-difference
They are rare who know the difference between two sides
They are rare who know the untold story
They are rare who know insightful and wise words. (66)

भेद अर अभेद को, या दोनों पक्ष को, समझना मौलिक है। दैनंदिन जीवन में हमें विभिन्न बातों में, वस्तुओं में, निवड करनी होती है, कुछ स्वीकारना व कुछ नकारना होता है, कुछ के प्रति उदासीन भी रहना

होता है; पर उसी समय, आंतरिकतः, ध्यान यह निवड रहितता है, अच्छे लगनेवाले या नहीं लगनेवाले भाव-पवनां का स्वीकार वा नकार नहीं, बल्कि उनका स्थिर सजगता से दरसण है। सो यह काल गति में जीने की व साथ ही कालातीतता की अंतर्समझ है। कालातीतता की बात अज्ञानता से अकथ कहानी है; और चेतना का खुलापन होने से, अवधूनन की गहराई के साथ, इसमें सुधि बुधि की बानी सहज है।

It is important to understand the matter of difference and non-difference, and that of both sides. In daily life we need to choose or avoid many things, accepting or rejecting them, or be neutral about some of them. However, at the same time, inwardly, meditation or observation of what is, of feelings and sensations, is choiceless work. That is, inwardly it is not a question of accepting or being attracted to feelings we like, or of rejecting or avoiding those we don't like – inwardly we steadily observe everything moment to moment. This is the fundamental insight of living in time (out there), and at the same time in timelessness (inwardly). Timelessness is the untold story of innocence or freedom from the known by knowing its place and limit; with our awareness being open, with the depths of the emptied mind, insightful and wise speech becomes possible.



THE UNDERSTANDING OF *ĀDESH*

Ādes or *ādes*h is used by Naths to greet each other on meeting or parting. It is like *Naman*, *Salām*, *Juley*, Hi, Good Day and so on. And it is also a reminder to each other about meditation. In *Machindra-Gorakh Bodh*, *ādes* or *ādes*h is described as follows:

Machindra:

avadhū ādesa kā anūṣama upadesa, sūni kā nirantara bāsa;
sabada kā paracā gurū, kathanta machindra nātha. (6)

Macchindra:

Avadhu, the significance of ādes is extremely subtle,
its emptiness is all-pervasive;
knowing the word is your guru, says Macchindranath.

Anūṣama (*anū sūkṣama*) means atomic, subtle, very fine, vibrations, sensations, which are the basic reality of life. These vibrations are called *Sabad* or Sound. And the truth beyond, *bodhi*, emptiness or intelligence, can be awakened only through the *alakh* sense and the moment to moment observation of sounds or vibrations, feelings and sensations, otherwise there is no possibility of the awakening of *bodhi*. Religious truth is not something to be believed, it is seeking and knowing truth within the body itself. *Upadesa* means *satsang* or dialogue, to be with truth as it is, live one with truth, speak of the truth. Thus, to live wakefully towards sensations and feelings, to *nād* or sounds, to live with what is, is the *anūṣama upadesa* of *ādes*h, and so, the word *ādes* or *ādes*h is

an indication for meditation. Apart from greeting each other, it reminds each other to be meditating.

Literally, *ādes̥h* means order, harmony, command and mastery – meditation is order, harmony, command and mastery. Nature in itself is order, it is wholeness and harmony, it is mastery. Despite time as morning, evening and so on, in nature, there is no past and future, there is only the present or timelessness. There is a place for time as past and future, memory and thought or thinking, in daily life; however, meditation is to live in the present, it is the art of living in timelessness.

The special quality of siddhas is *alakh vigyān*, and not getting stuck in mindsets or belief systems. It is not taking some persons or texts as religious authorities to depend upon. Denying the authority of texts in religious matters, Gorakh tells us to look within the body. This is very important to understand. Furthermore, we need to recognize that people who take books such as the *Vedas* etc. as authoritative are liable to pinch words or concepts from siddhas and buddhas and interpret them according to their ideological interests by associating them with *ātmā*, *Paramātmā* etc. For example, we find that the word *ādes̥h* or *ādes̥h* is often misinterpreted, as for instance in a late text such as the *Siddha Siddhānta Paddhati*, where it is stated that *ādes̥h* stands for the unity of the *ātmā* and *Paramātmā* (as in “*Aham Brahmāsmi*”).

adhika tatta te gurū boliye, hñ̃a tata te celā,
mana mānai tau sangi ramau, nahñ̃ tau ramau akelā. (161)

More wisdom: call him the guru,
less wisdom: the disciple.

If the mind agrees, roam together,
otherwise go off alone.

— Gorakh.

Another thing to note is that in the Nath School, when they greet each other on meeting or parting, it is customary to look into each other's eyes for a moment, which is important, and it is called *darasaṇ*. Then the one who greets, or both of them, looks towards the earth for a moment. Gestures of hands, *nāḍī ādeś* etc. are another matter. To bow down towards somebody's feet, to touch feet is not valued in the Nath tradition. It is said that to touch somebody's feet is insulting to human dignity.

ādeśa bodha, nātha tatta, yaha nāma dhāraṇa bāta nāhī,
alakha saṅgyāna, dhyāna gyāna, patha jīye nātha hoī.

The understanding of adesh, of being a Nath,
is not a matter of assuming the name Nath.
Whoever lives the way of the alakh sense,
of meditation and virtue, he or she is a Nath.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 276

मन मुंडा कै रूप न रेष, जगतगुरु मन ही मन देष।
उलटैगा मन तव मन कूं गहैगा, काचपलटि कंचन होय
रहैगा॥

Being ascetic the mind has no form or boundary.
Look for the world teacher within yourself.
As the mind is reversed it grasps the mind,
a glass transformed turns into and stays gold. (276)

This is GG#121.

गोरख, बात के मर्म में पहुँच के साथ, सत का सीधा निर्देश करते हैं। कोई भी सम्यक खोजी यह ब्रह्मा, विष्णु, शिव-शंकर, आदिनाथ, अवतार आदि मन-मुखी बातों में नहीं उलझता, वह किसी जगतगुरु या इश्वरनाम कल्पनाओं में नहीं फँसता। गोरख साफ कहते हैं — खोजी जीवै

जगतगुरु मन ही मन देख।

Gorakh gets right to the heart of the matter and indicates the truth directly. A seeker does not depend on or gets entangled with a legendary Vishnu, Shiva-Shankar, first or last Nath, *avatars* and so on, nor is he or she hung up on or stuck with ideas about God. Gorakh declares *khojī jīvai* "The seeker is alive!"

Jagatguru man hī man dekh

Look for the world teacher within yourself!



गोरखनाथ मठ (मंदिर), गोरखपुर

गोरखनाथ मठ (मंदिर), गोरखपुर, यह स्थान गोरखनाथ का अंतिम विश्राम स्थल होने से नाथ पंथ व जन जन के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल है। उल्लेखनीय है कि बुद्ध का अंतिम विश्राम स्थल कुशीनगर व कबीर का अंतिम विश्राम स्थल मगहर, यह दोनों स्थान गोरखपुर के साथ ही है।

इस गोरखनाथ मठ के सद्य महंत, योगी आदित्यनाथ (CM, UP), यह गोरखनाथ मठ के साथ नाथ पंथ के वरिष्ठ व जिम्मेदार योगी महंतों में से एक है। सो गोरख चेतना वा नाथ सिद्ध पंथ व अलख संग्यान, मतलब "अलख निरंजन अवधू!" संग्यान, शुद्धता के साथ चेतन रखना चलाना इनकी जिम्मेदारी है। मगर दिखता है कि योगी आदित्यनाथ इन्हें अलख विग्यान अर गोरख के अलावा, अपने थान मान की आस में या किसी प्रभाव में, ब्राह्मणवाद के मनमुखी राम, हिंदूत्व, आदिनाथ वा हिरण्यगर्भ, मंदिर-मस्जिद आदि की पड़ी है, जिन्हें गोरखनाथ ने आर-पार दीठी के साथ पहले ही सीधे नकार दिया है। ध्यान-ग्यान गुदड़ी यह खोजी सिध-साधिका जगाये रखते व चलाते है, जो अनंत सिधां की बानी है, स्पष्ट है कि इसमें कोई पहला वा आखिरी नहीं होता। तथा गोरखनाथ मठ को इन recent गुरू-चेलों ने, ब्राह्मणवाद के प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव में, मंदिर (देहुरा) बना दिया है, जो विडंबना है, दुख अग्यान है। जत सत सूं, जीव-जगत दया-करुणा के साथ, अस्तित्वगत जोग वा धरम संग्यान गोरख सबदी में साफ है —

गोरख सबदी 173:

दाबि न मारिबा खाली न राखिबा, जानिबा अगनि का भेव ।

बूढी हीं थै गुरबानी होइगी, सति सति भाषंत श्री गोरख देव ॥173॥

भौतिक या शारीरिक रूप में, हर वस्तु या जीव की, भले वह पेड़ पौधे है या ग्रह तारे, मनुष्य है या अन्य जीव, इनकी कोई शुरुआत, कुछ जीवनकाल व अंत होता है, या उत्पत्ति, स्थिति व लय होता है। तथापि, चैतसिकतः, चेतन जीवों में, चेतना की कोई विशिष्ट शुरुआत है ऐसा नहीं होता। हमारी चेतना, जो गहराई में सामुहिक प्रवाह है, व्यक्तिशः अलग नहीं है, यह दैनंदिन जीवन व मृत्यु में, अनेकानेक जीवों में, ज्वार भाटे की तरह भीतर बाहर होते अनंत काल गति है, जिसकी कोई शुरुआत नहीं; और यदि हमारे भीतर से, ध्यान की अगनि में चित्त अवधून्न होते, इसका अंत नहीं होता है, तो यह ऐसे अनंत भव में चलती जाना लाजमी है। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है, जिससे आदि व अंतिम, आदम व हव्वा, आत्मा व परमात्मा, हिरण्यगर्भ वा आदिनाथ, शिव-पारबति, लास्ट डे, कयामत, अवतार आदि मत-मान्यताओं की व्यर्थता देखी जाती है, यह जंजाल मन से समाप्त होता है।

हमारा चित्त प्रवाह, भाव-पवनां संस्कारों का उबलता, बहता प्रवाह, वास्तव में अनंत भुतकाल से (बूढी, अनादि) होते हुए है, संबंध के आइने में ज्वार-भाटे की तरह भीतर-बाहर होते चलायमान है। यह कार्यकारण शृंखला से है, और आगे भी अनंत काल ऐसे चलने की क्षमता से है।

दरसण की अगनि इसका खंडन व अवधूनन है। दुसरे शब्दों में, दरसण की अगनि यह काल का बोधि में अंत होना है, मतलब, बूढ़ी ही गुरुबानी होती है।

हिंदू ध्यावे देहुरा, मुसलमान मसीत।

जोगी ध्यावे परमपद, जहां देहुरा न मसीत।।

हिंदू ध्यावे राम कूं, मुसलमान खुदाय।

जोगी ध्यावे अलख कूं, कहै कौन पतियाय।।

— गोरख, सबदी 68, 69.



GORAKHNATH MATH (MANDIR), GORAKHPUR

The Gorakhnath *Math (Mandir)*, Gorakhpur, being the final resting place of Gorakhnath, is very important for the Naths and the general public. It is notable that Kushinagar, the final resting place of the Buddha, and Maghar, the final resting place of Kabir, are just within the radius of about thirty miles from Gorakhpur. Buddha, Gorakh and Kabir have basically the same sense of religion and society.

Yogi Adityanath (CM, UP) is the present *mahant* of the Gorakhnath Math, Gorakhpur, and in so being is one of the senior-most and responsible yogis of the Nath *Panth*. Thus, his main responsibility is to dedicate to keep the *alakh* sense, that is, the sense of “*Alakh Nirañjan Aavadhū!*”, of the Nath *Panth*, which is the school of Siddhas, cleanly awake within the Nath school and amongst people. However, it seems that other than the *alakh* sense or the sense of the Nath Siddha school — that is, the sense of Gorakhnath — he appears to be more interested in *Brahminic* ideas of *mana mukhi* Ram, Hindu, Adinath, monkey god, *Hiranyagarbha* etc., or in his so a parental heritage of *Thākuri*, for the sake of his political position and self-interest, directly or indirectly. Gorakhnath denies Hindu, Muslim, Ram, *Varnashram*, castes, *Vedas*, *Quran* and so on altogether.

Any idea of *Ādi*, the first, is a psychological flaw, which is being propagated in the name of Adinath, Adiyogi or Shiv-Parvati, which is something like Adam-Eve or *Hiranyagarbha* and such. Furthermore, these recent guru-disciples have

turned the Gorakhnath Math into a kind of temple (*mandir* or *dehurā*). All this is a pity — a part of sorrow and ignorance.

Gorakh Sabadi 173:

dābi na māribā khālī na rākhibā, jānibā agani kā bhevā,
būḍhī hī thai gurabānī hoigī, sati sati bhāṣanta śrī gorakha
devā.

Don't try to suppress the mind, don't keep it vacant.

Learn the mystery of fire.

It is very ancient and emerges as the guru's teaching.

True, it is true, says Gorakh Dev. (173)

Our consciousness, the boiling stream of mental impressions, of bhāva-pavanā, is rooted in the infinite past (*būḍhī*, primeval) and moves in an ebb and flow. It is a chain of causation, and has infinite potential to go on and on. The fire of observation is its breaking and ending. The fire of meditation is the ending of time into *bodhi*, that is, the emptying of *būḍhī* into *gurubānī*, intelligence.

Physically, there is a beginning, a sustaining and an end of every thing, be they plants or planets, humans or other creatures. However, psychologically, for conscious beings, there is no specific beginning of the consciousness of any being. Our consciousness, which deep down is a collective stream in time, in life (day to day living) and death (physical death) is an ebb and flow among vary many beings, not individually separated, but continually in flux without any beginning, and it could go on and on infinitely if there is no ending to it in the fire of observation, meditation. This is very

important to understand, so that ideas and ideologies in the name of the first and last, Adam and Eve, *ātmā* and *Paramatma*, *Hiranyagarbha* or Adinath, Adiyogi, Shiv-Parvati, Last Day or *Qayāmat*, *avatār* and so on are seen to be faulty and cast aside.

Gorakh Sabadis 68 and 69:

hindū dhyāvai dehurā, musalamāna masīta,
jogī dhyāvai paramapada, jahā dehurā na masīta.

The Hindu meditates in a temple,
the Muslim in a mosque;
the yogi meditates on the absolute path,
where there is no temple or mosque. (68)

hindū dhyāve rāma kū, musalamāna khudāya,
jogī dhyāve alakha kū, kahai kauna patiyāya.

The Hindu meditates on Ram,
the Muslim on God,
the yogi meditates on the alakh,
tell me, who will believe what I say? (69)



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 26

मरौ वे जोगी मरौ, मरण है मीठा ।

तिस मरणीं मरौ, जिस मरणीं गोरख रि दीठा ॥

Die yogi, truly die,
dying is sweet.
Die the death Gorakh died,
beholding. (26)

Line 2, *mari* could literally mean both died (*mara gayā*) and dies (*maratā hai*). GG#274, line 1 has *maranā hai mīṭhā*.

अलख संग्यान सूं आसति दरसन कालांत वै।

इहि भाव-पवनां जानै जत सत मीठा मरण वै॥ — सूरजनाथ।

alakha sangyāna sū āsati darasaṇa kālānta vai,
ihi bhāva-pavanā jānai jata sata mīṭhā maraṇa vai.

Truly – with the alakh sense,
observation of what is is timelessness –
being aware of feelings and sensations
is meditation, virtue and sweet dying. — Surajnath.

साधू अर साधक जगत में "अलख" इस शब्द का उपयोग एक सत उद्धोधन
या अलख संग्यान सतत चेतन चले इस संवेग सूं किया जाता है।

In the world of *sādhus* and *sādhaks* the word “*alakh*” is used as a declaration of truthfulness or a reminder of always being wakeful with the *alakh* sense.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 121

बरष एक देखिलै हो पंडिता, तत एक चीन्हिबा,
सबदैँ सुरति समाई।
गोरषनाथ बोलै भ्रम न भूलिबा रे भाई॥

O pandit, watch for a year,
recognise the truth.
Surati is found in the word.
Gorakhnath says, dear brother,
don't wander around in confusion. (221)



पिंड की अनित्यता व प्रतीत भव

पिंड की अनित्यता, काल गामिता, मतलब आत्मा वा अहं की अनित्यता, व प्रतीत भव (becoming, which is experiential) का सच, तथा काल का अंत, यह समझ जरूरी है। सो हम अहं वा आत्मा की नित्यता, अमरता के नाम पर एक अहंतोषी भरम में नहीं होते।

हमारा मन, चित्त, व्यक्तित्व, आत्मा वा आत्मवस्तु यह अस्तित्व गति का हिस्सा है, अलग नहीं। सिद्ध-बुद्ध अपने शरीर को स्पष्ट रूप से चार महाभूतों से बनता व आकाश तत्त्व में चलित देखते हैं; तथा मन को भी महाभूत गुणों, संखार, संग्या, भावपवनां-वेदनां के साथ स्मृतियां, शिक्षा, सामाजिक कंडिशनिंग, विचार से मिलकर बनता व आकाश तत्त्व में चलित देखते हैं। इसी कारण मृत्यु के बाद जैसे शरीर बिखर जाता है, वैसे मन या चित्त भी बिखरकर कार्यकारण की अनंतता के साथ अस्तित्व प्रवाह में चलता जाता है। इसे ऐसे समझे कि, गाड़ी के पार्ट जब बिखर जाते हैं तो गाड़ी नहीं रहती। शरीर व मन के ये टुकड़े या लहरें अन्य अनेक भव, गर्भ में प्रवेशित होते नये जीवों के शरीर व मन को बनाते हैं। जैसे एक जीव के मरने पर उसका शरीर या रूप मिट्टी में मिल जाता है, घास पत्तों पेड़ों द्वारा सोख लिया जाता है, फिर उसे दुसरे जीव अपने शरीर में लेते हैं, ऐसे ही मन के साथ नाम के स्तर पर सुक्ष्मता से होता है। जैविकी में इसे कुछ भोजन चक्र के अर्थ में समझाया गया है। तथा जीते जी भी हमारे एक दुसरे के मन, मतलब अहंभाव, राग-द्वेष,

भयानुरागादि द्रष्टा-दृश्य गति, ज्वार-भाटे की तरह (like ebb and flow), भीतर बाहर एक दुसरे में प्रवेशित होते चलते हैं। यह एकदम से अलग नहीं होते, जुड़े होते हैं, गहराई में यह सब एक प्रवाह है। सो बुद्ध कहते हैं, जिस शरीर को आप अपना मानते हैं वह अन्य शरीरों के अवशेषों, भोजन, पानी, खनिज आदि तरंगों से मिलकर बना है; और जिस अहं को आत्मा मानते हैं वह अनेक जीवों के मन के लहरों का भावपवनां, वेदनां रूप प्रवाही गठजोड़ है। तथा शरीर की मृत्यु अर पुनर्भव की संधी में वैचारिक याददाश्त का ओझल हो जाना साहजिक है, या यह कुदरत की एक व्यवस्था है।

सिद्ध-बुद्ध स्पष्ट करते हैं कि, चूंकि हर जन्म भव प्रवाह से एक नये व्यक्ति का जन्म होता है; उसी हवा-पानी या भव सागर से नयी नयी लहरों का उत्पाद व्यय होता रहता है, व हमारे चैतसिक क्रिया कलाप से यह भव सागर बढ़ता चलता है; कोई अमर, नित्य आत्मा/अहं नहीं होता, ऐसी कोई निरंतरता नहीं है, सो अमूमन लोग किसी पिछले तथाकथित जन्म या भव को नहीं जानते। व्यक्तिशः पुनर्जन्म होता ही नहीं है। करोड़ों में एकाध आदमी को कोई याददाश्त आये कि फलां साल पहले किसी गाँव में फलां जगह रहता था, या इसका पिता या उसका बेटा था, तो ऐसी स्मृति संभव है। बुद्ध-सिद्ध समझाते हैं कि, किसी गर्भ में किसी अन्य मर चुके आदमी की स्मृति इकाई की कोई बड़ी लहर प्रवेश कर जाय तो अगला बच्चा इस स्मृति-इकाई को देख कुछ बातें बताता है। इसे गलती से पुनर्जन्म का सबूत बताते है। यह कुछ ऐसा ही है जैसे किसी मर गये मानुस के शरीर के कुछ अंग काट कर किसी दूसरे में लगा दिए जाएं, जो

नये शरीर में जिंदा रहेंगे, लेकिन वह नया आदमी पुराने का पुनर्जन्म नहीं है। क्योंकि उसमें अन्य अंग न जाने कितने दूसरे मर चुके जीवों के शरीरों से जीवन प्रवाह की गति में जुड़े हैं। प्रकट अप्रकट आत्मवस्तु या अहं तथा प्रतियमान व्यक्तित्व अनेकों अन्य लहरों का जोड़ होता है; चैतसिकतः, कोई "मैं" संभव नहीं है। अहंभाव सिर्फ वैचारिक गति की तिब्रता में एक भासमानता है। चूँकि कोई ठोस "मैं" नहीं है, सब लहरों की, मतलब मन के पदों की, गति आकाश तत्त्व के खालीपन में है, और इस सबसे परे शुन्यता है, इसलिए ध्यान संभव है। ध्यान का संबंध कुदरतन सिर्फ अनत्ता व शुन्यता में ही पुलना (bridging) संभव है। जो धरम के नाम पर आत्मा, परमात्मा, लास्ट डे आदि संकल्पना मान कर चलते हैं, वे ग्यात से मुक्त हो तथ्यता से नहीं जीते हैं; सो ऐसे मनुष्य ध्यान शुन्यता से नाम-रूप का चैतसिक परावर्तन (transformation, emptying) नहीं जान सकते हैं, ना उसकी विशुद्ध व्याख्या कर सकते हैं। अलख संग्यान के साथ, मतलब ग्यात की जगह व मर्यादा समझकर ग्यात से मुक्त हो अजानता से चलते, अहंभाव द्रष्टा भयानुरागादि दृश्य भाव-पवनां की दरसण-ध्यान की अगनि में निर्जरा यह अहंपिंड या आत्मा का मरना है, काल का अंत होना है, जो चैतसिक शक्ति का परिवर्तन नहीं बल्कि परावर्तन है। इसके लिए सहज बड़ी गंभीरता जरूरी है, पर यह धरम के नाम पर शरीर व मन को अन्यथा कष्ट देना भी नहीं है; चैतसिकतः, समता बंधुता के साथ भव प्रवाह की गति समझकर शील, संवेग सूं चलना है। सो गोरख सीधे कहते हैं —

मरौ वे जोगी मरौ, मरण है मीठा... #26,

पंथ चलंतां आतमा मरै... #212,

जोग अवरण जोग अभेद... #313.

जिन व्यक्तियों में मत मान्यताओं से आसक्ति होती है, चमत्कार, रिद्धि आस होती है, आत्मा-परमात्मा, भजन/भक्ति अर मुक्ति, कयामत, कैलाश आदि कल्पनाएं होती है, ग्यात से मुक्तता नहीं होती, वहां अमन या शुन्यता नहीं जाग सकती। इसमें सहज बोध, यानी कामन सेंस, बढता नहीं, बल्कि घटता जाता है। आगे, हम यह भी समझे कि, किसी बात की आसक्ति, आस वा राग-द्वेष हमारे भीतर नहीं होने चाहिए या नहीं जागे ऐसा आदर्श वा ऐसे विचार अग्यान का ही हिस्सा होते है। मतलब, जैसे अहंभाव, आसक्ति, राग-द्वेष, भयानुरागादि मन में जागते है, हम यह जानते है कि यह भावपवनां जागै है; मानसिकतः, इसी में मुक्तता है, शुन्यता के साथ कुशलता सूं उसी भावपवनां का दरसण (observation) ध्यान है।

बृहत्तर अर्थ में देखे कि, सिद्ध-बुद्ध ना केवल आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के अहंतोषी झूठ को उजागर कर खारिज कर देते हैं, बल्कि इससे जुड़ी सामाजिक कंडिशनिंग को भी खत्म कर देते हैं। साथ ही शरीर, संखार, मन के स्तर पर इको-सिस्टम या परस्पर निर्भरता के अस्तित्वगत संग्यान को उजागर करते हैं। अर्थात, सभी के शरीर एक दूसरे पर निर्भर है, सबकी चेतना संबंध की गति में आपस में जुड़ी है,

मूलतः एक प्रवाह है। सो सब प्राणीयों में मूलभूत समता के साथ भाईचारा व प्रेम होना जरूरी है। और बोधि की अगनि इस प्रवाह की काल के परे निर्जरा होना है। इसी से बोधि के मौन के साथ बुद्ध की बहुजन हिताय बहुजन सुखाय मंगल मेत्ता प्रवाहित होती है; अलख संग्यान सूं गोरख की जोग अवरण जोग अभेद के साथ दया-करुणा बहती है। सो खुली व सम्यक दृष्टि सूं इस निसपति पर बुद्ध, गोरख ने वर्णाश्रम, उच्च-नीचता जैसी फिजूल बातों को सीरे से नकार दिया, और सबको समान रूप से अपने संघ वा पंथ में प्रवेश दिया, दुख निर्जरा पथ परिशुद्धता के साथ जगाया।

अहंगंड के बगैर ध्यान ग्यान सतसंग सूं नाथ होना क्या है यह बुद्ध अर गोरख के शब्दों में —

अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया॥ — बुद्ध।

मन मुंडा कै रूप न रेष, जगतगुरु मन ही मन देष।

उलटैगा मन तव मन कूं गहैगा, काचपलटि कंचन होय रहैगा ॥276॥

— गोरख।

धरम की सूझ के साथ ध्यान की अगनि में अहं की मोक्ष-मुक्ति नहीं बल्कि अहं का चैतसिक मरणा है; बोधि की समझ के साथ साधक के भीतर से काल, भव प्रवाह की निर्जरा है; दुख, अग्यान का वास्तविक अंत होते जाता है। तथा यह भी कि, ध्यान की अगनि में भव प्रवाह से नीचे की योनीयों के भव संखार, ऐसे भाव-पवनां-वेदनां के पर्दे, पहले सामने

आकर जलते जाते हैं; मतलब, भाव-पवनां ही बोधि में परावर्तित होते बोधि का गहराते जाना होता है। सो जीते जी, व शरीर मृत्यु के बाद, जो भी गहरे भव संखार है उनका नीचे की योनीयों में बिखरना कुदरतन नहीं होता, जिसे आप धरम पथ पर संबंध के आइने में प्रतीत करते हैं।

व्यक्ति भव प्रवाह का हिस्सा है, प्रतिनिधि है, व्यक्ति भव प्रवाह है। व्यक्तित्व के भीतर से तृष्णा के साथ भव प्रवाह का बनना-बिखरना-बनना निसर्ग की अनंत कार्यकारण गति में चलता है —

जीव जगत है, (प्रातिनिधिक रूप से), और जगत जीव के भीतर है!

— सिद्ध।

You are the world, and the world is in you!

द्रष्टा दृश्य आद्यै! The observer is the observed!

— Jiddu Krishnamurti.

चैतसिक स्तर पर अहं का मोक्ष संभव नहीं है, अहं से भव ही संभव है, इसे खूब समझे। सम्यक ध्यान की अगनि में अहं का चैतसिक मरणा होता है, जो मीठा है, निरवाण है। दुसरे शब्दों में, हमारे भीतर से भव प्रवाह में, दुनिया में, दुख बढ सकता है, अर दुख निर्जरा भी हो सकती है। हम जिम्मेदार हैं!



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 310

सबद ही में कहे ब्रह्म, मनसा नहि साधै, ते जोगी मन मनसा
कदे नहि बांधै।

भणत गोरषनाथ मछंद्र का पूता, ये नये ग्यानी भगत घने
बिगूता॥

They prate Brahma in words,
but don't learn about desire,
those yogis can't contain their mind and desires.
Gorakhnath, son of Macchindra, says,
these strange scholars and bhaktas are much fouled.
(310)

This is GG#330.



IMPERMANENCE OF THE SELF AND THE EXPERIENCE OF BECOMING

Understanding the impermanence of the self, of consciousness, as something that is experienced in time, that is changing and in flux, and understanding the ending of time, the dying of the self, this is what is truly needed. Then, we shall not be deluded by a false impression of the self or *ātmā*, as being something permanent, immortal, timeless.

Our body, mind, consciousness, personality, *ātmā* or *ātma-vastu*, all this is a part of the movement of existence, and not separate from it. Siddhas and buddhas see our body matter as coming into being out of the four tattvas or the elements of earth, water, fire and air, and the self or consciousness comes into being from mental impressions, the sensory mechanism of recognizing and evaluating, memory and feelings and sensations, social conditioning, thinking and desiring, and moves in the sky element. In physical death, as our body disintegrates and merges into nature, the mind or consciousness disintegrates and merges with the global consciousness. Just as when parts of a car are disintegrated, the car does not remain any more, similarly those disintegrated parts of the body and mind enter into many wombs and help create new lives. When a body dies, it is absorbed by grass, plants and leaves, and other beings take those plants etc. into their bodies. In modern biology, it is called the chain of food or the food circle, and the same thing happens to the mind on a subtle level. As living beings, the movement of the observer and the observed, of our minds, that is, our feelings of “I”ness, attraction, repulsion, fear, affection

etc., which is what we are, move in an ebb and flow, and are all mixed up together. They are not separated in fact, they are connected, deep down they are one stream. So the Buddha says that the body which you call your body is made up from things from other bodies, food, water, minerals etc.; and the self which you call your *ātmā* is made up of waves of feelings and sensations, received and released, among very many beings. Furthermore, the discontinuation of our memory at the juncture of our physical death and further becoming is natural.

Siddhas and buddhas declare that each and every cycle of life is a fresh beginning from the stream of becoming. There is no permanent *ātmā* or self, there is no such continuity. This is why people do not know about any of their earlier life cycles. Individually, there is no rebirth. Maybe one person among millions comes with a memory from a past life, that earlier he was living in such and such a village, was a son or daughter of so and so, which is possible. Siddhas and buddhas explain that such a memory is possible, because a large part of some consciousness has possibly entered in a next life cycle, and so there could be some of the past memory, which incorrectly is said to be proof of the theory of rebirth or reincarnation. It is something like parts from a dead body being transplanted into another body, which may live on, but it is not the rebirth of the person who has died. The visible and hidden bundle of the self is a combination of many waves. Psychologically, no I is possible. “I”ness is simply a perception in the ongoing stream of thoughts and feelings. As there is no concrete I, everything is the movement of layers of the mind, of feelings and sensations, emptiness is beyond all this, and so meditation is possible. Meditation on the basis of freedom from the known

and the observation of what is is naturally capable of working as a bridge between impermanence and emptiness. Those who in the name of religion believe in *ātmā*, *Paramātmā*, the Last Day, *Qayāmat* and so on, cannot obtain freedom from the known. Psychologically, they cannot live with what is, cannot know about emptiness and emptying, can neither define observation nor emptiness and emptying.

Living with the *alakh* sense, that is, moving with freedom from the known by knowing its place and its limit, and the ending of the self, of feeling of “I”ness or the observer and the observed, of fear, anger, affection etc., in the fire of observation, is not transition but transformation. It is dying or death, which is sweet. This demands being serious with ease, which is not to torture the body and mind. It is to understand the movement of becoming, of impermanence and sorrow, and live with equanimity and fraternity, virtue and meditation with passion. So Gorakh says,

Die yogi, truly die, dying is sweet... #26,

The soul is weary from wandering... #212,

Yoga is not varna and ashram, yoga is not divided... #313.

It is important to be aware of the place and limit of the known and thinking. Emptiness is not possible in those who are not free from the known by knowing its place in daily life and its limit otherwise. No-mind or emptiness cannot be understood by those who are attached to ideologies, desire miracles, *riddhis*, and have ideas like permanent *ātmā*, *bhakti* and *mukti*, *Qayāmat*, *Kailash* etc. Common sense or right understanding does not flower in those, but is reduced. Furthermore, we need to be aware that an ideal, that desire or attraction and repulsion

should not arise in our mind is a part of ignorance. That is, whenever desire or attraction, repulsion, anger, affection, “I”ness and so on arise in our mind, we note that this or that has arisen, this is psychological freedom from what has come up in the mind. Thus, with the sense of emptiness, observation of feelings and sensations is meditation.

Siddhas and buddhas expose the falsity of the ego-soothing idea of a permanent, timeless *ātmā*, that leads to social conditionings of separation. They show the interdependence of body and mind, that all life is related, is one flow, and that fraternity is fundamental. They show that the fire of observation, *bodhi*, is the ending of time and sorrow. With the silence of *bodhi* there is the awakening of the feeling of goodness for all; it is the awakening of compassion with the *alakh* sense, with the sense that yoga is not *varnāshrama*, not divided. So Buddha and Gorakh simply denied any idea of *varnāshram*, high status and low status, and openly welcomed all people into their schools. They opened the path of the ending of time, sorrow and ignorance for all people. Their teaching is to believe nothing, no matter where we read it or who has said it, not even if Buddha, Gorakh or anyone else has said it, unless it agrees with our own reason and common sense. It is to be a light unto oneself!

Being a Nath is not an ego matter, it implies meditation and virtue. In the words of the Buddha and Gorakh:

attā hi attano nātho, attā hi attano gati.
attā hi attano nātho, ko hi nātho paro siyā,
attanā hi sudantena, nātham labhati dullabham.

You really are your own master,
you are responsible for where you are going.
You really are your own master,
who else could be your master?
Work rightly hard on yourself,
and find the mastery so hard to find.

— Buddha.

mana muṇḍā kai rūpa na rekha, jagatagurū mana hī
mana dekha,
ulaṭaigā mana tava mana kū gahaigā, kācapalaṭī
kañcana hoyā rahaigā.

Being ascetic the mind has no form or boundary.
Look for the world teacher within yourself.
As the mind is reversed it grasps the mind,
a glass transformed turns into and stays gold. (276)

— Gorakh.

With right understanding through the fire of meditation, there is no liberation or *mukti* of the “I” or ego, but a dying which is sweet. In other words, with insight into *bodhi*, there is the ending of time and becoming, sorrow and ignorance. Moreover, right meditation is the ending of mental impressions, layers after layers of feelings and sensations, naturally, firstly from lower worlds, plant and animals worlds, that is, these layers are dissolved into *bodhi*, which is the deepening of the *bodhi* or intelligence itself. So while living, and in physical death, whatever mental impressions come up from the deeper levels, they are not degenerated into lower

worlds or yonis, which we experience in daily life in the mirror of relationship.

A person is a part of or a representative in the stream of becoming; that is, he is a stream of becoming. Our desire results in individual and global becoming, as both are related, and meditation is its emptying from that stream. In Jiddu Krishnamurti's words, "You are the world, and the world is in you", and, "The observer is the observed!"

Psychologically, liberation of a person, of the "I", is not possible; only becoming is possible for the "I". Understand this well. Right meditation is the ending of the "I", which is *nirvāna*. In other words, through us in the stream, there could be increase in sorrow, and there could be the ending of sorrow as well. We are responsible!



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 311

जोगी सोई जुगति बिचारै, काम क्रोध विकार ही जाँरै।

माया ब्रह्म का करै निबाला, ता जोगी कै सदा उज्याला॥

The yogi pursues the skill,
burning up disorders like lust, anger.
He swallows maya, Brahma,
and is always open to light. (311)

This is GG#331.

"आपने यह सवाल कभी नहीं किया कि ग्यान क्या है, टेक्निकल ग्यान के सिवा ग्यान। ग्यान अपूर्ण ही होता है। आप किसी भी चीज के बारे में पूरा ग्यान नहीं पा सकते। वह एक हकिगत है। सो ग्यान हमेशा अग्यान की छाया में होता है। बस निगल जाओ उसे! यह हमेशा अग्यान की छाया में होता है। सो ग्यान से पैदा होती कोई भी कृति अधूरी ही होनी है।"

— जिद्दू कृष्णमूर्ति, मुंबई, 25 जनवरी 1985.

"You have never questioned what knowledge is, knowledge apart from technological knowledge. Knowledge is invariably incomplete. You cannot have complete knowledge about anything. That is a fact. So knowledge is always in the shadow of ignorance. Just swallow that! It is always within the shadow of ignorance. So any action born out of knowledge must be incomplete."

— Jiddu Krishnamurti's talk, Bombay/
Mumbai, 25 January 1985.

गोरखनाथ व नाथ यह शैव, वैष्णव नहीं है, हिंदू, मुस्लिम नहीं है

समझ यह स्त्री वा पुरुष नहीं होती, समझ का लिंग नहीं होता। साधू अर सज्जन की कोई जात, वर्ण (वर्णाश्रम), धरमनाम परंपरा नहीं होती। अलख संग्यान व चेतना की शुन्यता शुद्ध जल है — पीये अर जाने। अलख विग्यान की खोज के साथ गोरखनाथ यह नाथ वा सिद्ध पंथ के पुनर्प्रस्थापक है, प्रमुख पुरुष है। अलख संग्यान सिद्ध तत्त है, जोग है। मूलतः, जोग, धरम, धम्म, दीन, रिलीजन यह समानार्थी शब्द है। तथा ऐसे कुदरती धरम वा मानस चेतना नियमों को समझकर चलना, भव धरम के बजाय निरवाण धरम से चलना, अमूमन जोग वा पंथ/पथ कहा जाता है। स्पष्ट है कि, पंथ का किसी धरमनाम परंपरा, विश्वास, मान्यताओं से संबंध नहीं है।

नाथ पंथ को मिथकीय शिव वा शिव-शंकर से जोड़कर शैव संप्रदाय मानने की भूल कियी जाती है। क्या है तथाकथित शिव, शिवलिंग, ज्योतिर्लिंग या शिव-शंकर? जननेंद्रिय पुरुष, स्त्री वा किसी देवता के हो, प्रायवसी की बात है, दोनों का संभोग और भी प्रायवसी की बात है, किसी तरह से प्रदर्शन वा पूजन की शोभा नहीं, कोई जस्टिफिकेशन नहीं। शिवलिंग को उत्पत्ति मूल कहते हुए कोई भी जस्टिफिकेशन यह मनमुखी बातें होती हैं, सत नहीं —

मूल अगोचर... — गोरख, सबदी 286.

इसके साथ चाहे जो संकल्पनाएं, मंत्र, तंत्र वा कथा-कल्पनाएं जोड़ दे, इसमें ध्यान ग्यान व धर्म की सम्यक समझ जगने का सवाल ही नहीं। शिवलिंग वा शंकर-पारबति कैसे आदिवासी या मूलनिवासियों की देवता हुई? कब व कैसे विचार पैदाइश शिव-शंकर, आदिनाथ, आदियोगी, आदिगुरु यह सिद्धों का गुरु, आदिगुरु हो गया? बुद्ध के अवतार या महात्मा होने जैसे झूठ प्रोपागंडा से? कोई आदि वा अंतिम योगी/गुरु/नाथ (आदिनाथ, अंतिमनाथ) नहीं होता है। गोरख सीधे कहते हैं —

गुदड़ी जुग च्यारि तैं आई, गुदड़ी सिध साधिका चलाई।

गुदड़ी मैं अतीत का बासा, भणंत गोरखनाथ मछिंद्र का दासा॥

— गोरख।

[जुग च्यारि = जुग जुग]

अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया॥ — बुद्ध।

शिव = प्रेम, करुणा, मंगल, auspicious, love; लिंग = संकेत, sign, mark; पिंड = a body, mass. सो कोई फूल, सादगी से ध्यानी मूर्ति, साफ सुथरा मकान वा कार्यालय, जिम्मेदार या शीलवान मानुस, ध्यानी-ग्यानी, पेड़, पहाड़, नदी, तालाब, समाधि पत्थर, मजार, स्तूप, सुर्यास्त, ताजा पका अन्न, बालक आदि शिव है, मंगल है, शिव पिंड है, मांगल्य लिंग है। कहने की जरूरत नहीं कि, शीलवान या ध्यानी-ग्यानी

होना किसी किताबी सर्टिफिकेशन की बात नहीं है, यह जीने की या जिवंतता की कला है। सम्यक ध्यान अर चित्त अवधूनन यह शिव है, मंगल है। सेक्स इंद्रियों का कोई प्रदर्शन शिवलिंग वा शिवपिंड नहीं हो सकता। और ऐसे किसी मूर्त या अमूर्त के नाम पूजा-पाठ, प्रार्थनादि में आपको कुछ संचरण होता है, अनुभव आता हैं तो आप वही अनुभव करते है जिसमें विश्वास करते है, और कुछ नहीं, और यही आपके अनुभव को अयोग्य सिद्ध करता है।

ये ज्योतिर्लिंग, धाम, शक्तिपीठ, तीर्थादि धरम के नाम पर सामंती व्यावसायिक केंद्रों से ज्यादा नहीं है। काली काल महाकाल यै सब काल, देखे, भव दुख अग्यान गति काल। भ्रमित होना कुदरत को मंजूर नहीं। इधर उधर से कुछ टैगिंग बातों में व बुद्धि रमण में प्राण नहीं होता। धरम पथ अर बोधि की सम्यक सूझ किसी मन-मुखी अतिवादीता से नहीं, बल्कि सिद्धांत, साधना व दैनंदिन आचरण की मज्झिमता में झलकती है। सर्वधर्म समभाव यह संकल्पना धरम के नाम पर अपनी परंपरा बचाने की वकालत से ज्यादा नहीं है। सम्यक विचारणा के साथ अलख संग्यान सूं दरसण की अगनि में धरम का कुदरतन महान अस्तित्व खुलता है, जो किसी पर लादने की या काम्प्रोमाइज की बात नहीं।

भगवद्गीता असल में क्या सिखाती है जाने :

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ (3/35)

अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए परधर्म से,
गुणरहित स्वधर्म श्रेष्ठ है।
स्वधर्म में मरना भी कल्याण कारक है,
पर परधर्म तो भय उपजाने वाला है॥

सो मेरा एक धरम व किसी पराये का दुसरा धरम यह बात धरम नाम परंपराएं, जैसे शैव, वैष्णव, जैन, वैदिक, या कुरानिक, बिब्लिकल आदि के संदर्भ में हो सकती है; या खेती, कारिगरी, पशुपालन, कला आदि व्यावसायों के संदर्भ में हो सकती है; या मनुष्य के स्वभाव गति के संदर्भ में हो सकती है। धरम के नाम पर अपनी या किसी और की परंपरा में, व्यवसायिकता में या किसी स्वभाव में बंधे होने, रहने की वकालत कियी हो सकती है। मगर कोई भी आदमी धरम के नाम पर चैतसिकतः किसी परंपरा में बंधा रहे, कोई व्यावसायिकता अपने लिए बंधन कारक माने, या स्वभाव बदलने की बात नहीं है ऐसा माने, यह सब समझ की बात नहीं है। व्यावसायिकता को आप चाहे एक या अनेक बार बदल दे, निर्वाह का कोई भी सम्यक साधन अपनाये, कुदरतन खुली बात है। किसी व्यवसाय में किसी के नेक या गलत व्यवहार को धरम का एक अंग कहे, यह समझा जा सकता है; मगर किसी व्यवसाय या परंपरा को ही किसी का धरम कहे या बताएं यह सामाजिक प्रदुषण है, social fraud है। देखे कि, अपने वर्णाश्रमवाद के लिए गीता यह मानसिक मैनेजमेंट के साथ कैसी किताब है। और गीता में इधर उधर से कोई पश्यंति, विपश्यना, प्रज्ञा जैसी बुद्ध आदि से टैगिंग है, या कुछ partial insights

है, तो इसका मतलब यह नहीं कि इस बाबत गीता में मौलिक समझ की बात भी है। इन बातों को आप अनालिसीस करके समझ सकते हैं, और बोधि की अगनि में आरपार देख, समझ सकते हैं।

धरम का अपना महान अस्तित्व है, धरम सार्वजनीन होता है, मेरा या आपका अलग नहीं होता, और यह समझना कामन सेंस (common sense) की बात है। संबंध के आइने में छह इंद्रियों के किसी विग्यान से किसी चीज के साथ संपर्क होना, हर व्यक्ति की अपनी चैतसिक रेकार्डिंग या संग्या से उस इंद्रिय संपर्क की पहचान व मुल्यांकन होना, व तदनुसार वेदनां-भावनां का जगना यह सार्वजनीन है, सत धरम की बात है, कि जिसका भारतीय, चाइनीज, इसाई, वैदिक, मुस्लिम, बौद्ध या किसान, डाक्टर आदि से कोई मतलब नहीं है। और उस वेदनां-भावनां के प्रति चेतन अचेतनतः राग या द्वेष करना या होना, या अलख संग्यान सूं चेतन हो दरसण-ध्यान में आना, आते रहना, यह इसी पल में जीने की कला है, जो धरम की सार्वजनीनता है, अनुशासन है। सो दरसण की शुद्धता से धरम की, जीवन की, अनंत गहराइयां खुलने का रास्ता साफ है। अहंभाव द्रष्टा क्या है, भयानुरागदि दृश्य क्या है, काल चेतना, समाधि चेतना, शुन्य चेतना क्या है, दरसण की अगनि में बोधि का जगना व चित्त अवधूनन क्या है, दुख गामिता व दुख निर्जरा क्या है, ऐसी सार्वजनीनता धरम की बात है। अन्यथा, कोई वर्णाश्रमवाद, ब्राह्मण-शुद्रादि विचार पैदाइश बातों से मानव समाज में बुद्धिभ्रम करे, लोक-

परलोक आस धरमनाम धंधा वा राजभोग का जुगाड़ चलाएं, किसी किताबी अधिकारिकता वाली धर्मांध बातों को धरम मानें, ऐसे में बहे, भ्रमित बन क्षत्रियादि की आस लगाये, सो अहंगंड में रहे, तो ये धरम व सामाजिकता के नाम पर भ्रम है। धरम के नाम पर विचार पैदाइश रास्ते, साम, दाम या हिंसा, हत्या, युद्ध के समर्थन आदि की कोई तुक नहीं हैं।

ऐसे ही गीता का कर्म सिद्धान्त जाने :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥ (2/47)

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है,

उसके फलों में कभी नहीं।

इसलिए तू कर्मों के फल हेतु मत हो,

तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो॥

देखे कि, दैनंदिन जीवन में आजिविका आदि के लिए कोई कर्म करना, व उसके फलाफल का नियोजन, यह कर्म के साथ जुड़ी बात होती है, अलग नहीं। मतलब, यह निसर्गतः सापेक्ष होने से, अनेकों शक्तियों पर निर्भर होने से, फलाफल की 100% निश्चितता ना होते हुए भी, इसमें फल की अपेक्षा होना, दैनंदिनी में कर्मफल के साथ अधिकार का जुड़ा होना, कुदरतन है। इसमें समझने की दो बातें है —

1. दैनंदिन जीवन में कर्मफल हेतु ना होने की आदर्श बात कहना; या किसी तरह से किसी के कर्मफल के अधिकार को नकारना; अहं के नाम पर किसी आदर्श की, कल्पना में होने की, बात चलाना।

2. चैतसिकतः, कर्मफल हेतु सह अहंभाव, भयानुरागादि जो भी वेदनां, भाव-पवनां मन में उभरते हैं यह क्या बात है, इसकी खोज के लिए खुला होना। सो भाव-पवनां का संबंध की गति में सीधे देखा जाना, और देख-समझकर, अंतर्समझ के साथ, स्पष्टता से होना।

सो 1 और 2 यह अग्यान अर प्रग्यान के मूलभूत फर्क की बात है। और इस बात की अंतर्समझ गीता सहित वेद-वेदांत आदि में नहीं है। गीता, वेद-वेदांतादि यह अहंभाव या द्रष्टा को भयानुरागादि दृश्य से अलग मान कर, नित्य कालातीत सोच कर, उसके साथ आत्मा-परमात्मादि संकल्पनाएं जोड़ कर, अहंभाव द्रष्टा को उंचे पायदान पर बिठा कर, व द्रष्टा के साथ अलिप्त, अकर्मण्य आदि आदर्श जोड़ कर अनेक प्रकार से तर्क वितर्क तो कर सकते हैं; पर द्रष्टा यह दृश्य का हिस्सा है, द्रष्टा दृश्य ही है, यह देख समझकर दरसण ध्यान व काल दुख निर्जरा की जान नहीं पा सकते। काल दुख भव गति और काल दुख निर्जरा गति क्या है इसकी अंतर्समझ जरूरी है।

गीता और पाप-पुण्य योनि :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शुद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ 9:32

हे पार्थ, जो मेरी शरण में आते हैं, भले वह पाप योनि से है —

स्त्री, वैश्य तथा शुद्र, वह भी परम गति को प्राप्त होते हैं।

सो धरम के नाम पर भ्रमित करने वाली बातें, गलत बातें, उजागर कर साइड करना जरूरी है; साथ ही खुले व सहज गंभीर मन से सत की खोज करते सत को चेतन रखना जरूरी है। ऐसे, साधू अर सज्जन सतसंग (dialogue) करते हैं, शास्त्रार्थ (debate) नहीं। जोग धरम वा बोधि संग्यान जन में चेतन रहे इस अर्थ से सिद्धों के साथ सूरजनाथ कहता है — “आगे आगे गोरख जागे!”

हिन्दू ध्यावे राम कूं, मुसलमान खुदाय।

जोगी ध्यावे अलख कूं, कहै कौन पतियाय॥ (69)

— गोरख।

बिस्मिल्लाहीरहिमानिर्हीम। > यह मनमुखी बात है।

कुदरत रहमान रहीम। > यह हकीकतन सत है।



GORAKH NATH AND NATHS ARE
NEITHER *SHAIVA* NOR *VAISHNAVA*,
NEITHER HINDU NOR MUSLIM

Understanding is neither man nor woman, understanding has no gender. A *sādhū* or a gentleman does not belong to any caste, creed, *varna*, or religious tradition. The *alakh* sense, the purity of awareness, is clear water. Drink it and know it. With the exploration of *alakh vigyān*, Gorakh was the re-organizer, the re-founder of the Nāth *Panth*, and for this he is known as the prime person.

The *alakh* sense is the *siddha tatta*, truth eternal, the foundation of *joga* or yoga, of religious learning. *Joga*, yoga, *dhamma*, *dīn*, *dharma*, religion are synonymous. Understanding the nature of consciousness is religious understanding; following the practice of emptying, instead of becoming, is called yoga or path. The path has nothing to do with traditions, beliefs, ideas and ideologies.

However, many people erroneously associate the Nāth *Panth* with the mythical Shiv or with the *Shaiva* tradition, represented by the *Shiv-linga*. The *Shiv-linga* and *yonī* are the sex organs of men and women or, rather, they represent the sex organs of divine beings. Whether human or divine, sex organs are a matter of privacy. Symbolic or whatever, a show and worship of sex organs is not such a good thing, and any justification of them as the source of creation etc., is bound to be a mind game.

mūla agocara... “The source cannot be perceived
(by sense organs on their own)...” — Gorakh Sabadi 286.

You may associate stories, *tantras* and *mantras* with Shiv or *Shiv-linga*, and may experience something out of your beliefs, but there is no possibility of any awakening of right understanding in all this. You will always experience what you believe, and nothing else, and this invalidates your experience. How could Shiv-Shankar, *Shiv-linga*, Ādinath, Ādiguru, Ādiyogi, all of which are but the products of thought, have become the guru of siddhas or the first or last guru? There is no first or last yogi, guru, Nāth. Gorakh says:

gūdaṛī juga cyāri tã āī, gūdaṛī sidha sādhiḱā calāī,
gūdaṛī māl atīta kā bāsā, bhaṇanta gorakhanātha
machindra kā dāsā. (197)

The ascetic's rags have come down through the
four ages,
kept alive by siddhas and yoginis.
The timeless lives in those rags,
says Gorakhnāth, Macchindra's servant.

Gorakh and his school or the Nāth *Panth* is also known as Siddha *Panth*. Nāth siddhas and buddhas are one in spirit:

attā hi attano nātho, attā hi attano gati.
attā hi attano nātho, ko hi nātho paro siyā,
attanā hi sudantena, nātham labhati dullabham.

You really are your own master,
you are responsible for where you are going.
You really are your own master,
who else could be your master?

Work rightly hard on yourself,
and find the mastery so hard to find.

— Buddha.

Shiv means love, compassion, auspicious; *linga* means sign, mark. A flower, a meditative image, a clean house or office, a responsible and virtuous person, a wise and meditating human being, a tree, mountain, river, a *samadhi*, tomb, *mazār*, *stūpa*, freshly cooked food, a child and so on are *Shiv*, are *Shiv-linga*, that is, lovely, auspicious things. Right meditation and the cleansing of the mind is *Shiv*, love, auspiciousness.

We should see that all those *dyotirlingas*, *dhāmas*, *shakti-pithas*, *tirthas* are simply business centres or malls in the name of religion. Ideas of *Kāli*, *kāla*, *mahākāla* etc. are all *kāla*, time – which is becoming, sorrow and ignorance. No *prāna* or insight is found in things that have been adopted from here and there and tagged or rationalized. The right understanding of *bodhi* and the way is never found in mind created practices away from life as it is, but is revealed through right *siddhānta* or understanding of religious truths and practices and living them in daily life. The idea of treating all religions or religious traditions as equal, as is sometimes heard, is simply the attempt to save one's beliefs and traditions in the name of religion. The all pervading existence of religion per se is revealed by itself with the *alakh* sense and the fire of observation of what is, which is neither a matter of believing nor something to be imposed on somebody nor to be compromised.

What does the *Bhagavad Gita* actually say?

Let us see:

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ (3/35).

śreyansvadharma viguṇaḥ paradharmātsvanuṣṭhitāt,
svadharṁe nidhanaṁ śreyaḥ paradharmo bhayāvaḥ.

Better one's own dharma though imperfectly carried
out than the dharma of another carried out perfectly.

Better death in one's own dharma for to follow
another's dharma is perilous.

Saying that I have my religion and others have their religions, be they religious traditions such as *Shaiva*, *Vaishnava*, *Jain*, *Vedic*, *Quranic*, Biblical etc., or that I have my profession, others have theirs, such as farming, carpentry, arts, medicine, trading etc., or that we all have different personalities or characters, this seems to be advocating that we should stay stuck with our traditions, professions or characters. However, to accept staying stuck to a tradition in the name of religion, to fix oneself in some profession, or to accept the impossibility of a change of one's nature or character, all this is basically wrong, and shows no wisdom. You may change your profession at any time, may adopt any livelihood, which you are free to do. However, to say that a profession or tradition is somebody's religion is socially polluted, it's a social fraud. The *Gita* is a text for upholding ideas of *varnāshrama* and the *Vedic* tradition! If some keywords from the Buddha, for example, such as *pashyanti* or observing, *vipashyanā* or pure look, *prajñā* or intelligence are found in the *Gita*, or some partial insights are noticed therein, it does not mean that there

is right understanding about these things in the *Gita*. You may analyze it, study it, but in the light of *bodhi* or intelligence you may see and understand it clearly. Religion has its own existence, religion is universal, religion is not separated into mine and yours, it is a matter of common sense to understand this. In the mirror of relationship, i.e. contact with a sensory object using any of the contact mechanisms (*vigyān* or *vinnān*), such as eye, ear etc., recognition and evaluation by the cognition mechanism (*sanjñā*) on the basis of recordings in the consciousness from the past, and accordingly the arising of sensations and feelings (*vedanā*) in the body-mind, this process is universal, it truly is part of religion as such, and is nothing to do with being Indian, Chinese, Christian, Muslim, Buddhist or a farmer, doctor etc.. Thus, whether conscious or unconscious, attraction or repulsion towards those feelings and sensations is one thing, which is becoming and sorrow. On the other hand, observation of the same sensations and feelings with freedom from the known, with the *alakh* sense, coming to observation again and again, this is the art of living in this moment, which is the universality of religion, the order of religion in timelessness. Thus, with insight into observation, the way of unfolding of religion, of life, is open.

What is the feeling of “I”ness or of the observer, what are fear, affection etc. or the observed, the awareness in time, in *samadhi* or suspended time, what is emptiness, what is the awakening of *bodhi* in the fire of observation and the emptying of the consciousness, what is it to be in time and sorrow and what is the ending of sorrow – such universality is the matter of religion. Look, understanding is not a man or woman; nor does a *sādhū* or a gentleman belong to any caste,

varnāshram, or tradition that goes in the name of religion. If some people are dividing human society into *varnāshram* – *Brahmin* and *Shudra* etc. – carrying on business in the name of religion, making false propaganda in the name of religion based on books that are considered authoritative, such as the *Vedas*, and pursuing their desire to become a *Kshatriya*, or finding pleasure in boosting their ego, then all this is becoming deluded in the name of religion and society. Our thoughts can design many so-called ways in the name of religion, can try to justify violence, killings, wars, but all this is rubbish in the name of religion.

Likewise, look into theory of *karma* in the *Gita*:

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥ (2/47).

karmanyevādhikāraṣte mā phaleṣu kadācana,
mā karmaphalaheturbhurma te sango'stvakarmaṇi.

To action alone have you a right
and never at all to its fruits,
let not the fruits of action be your motive,
neither let there be in you any attachment to inaction.

When you do some work or follow a profession for your livelihood, you plan for its returns, which is associated with what you do, it is not separate. Put another way, any work we do, depends on many things or forces, even when there is no 100% guarantee of returns, or expectation of a return in daily life. There are two things to understand in this:

1. Having an ideal of desiring nothing in your daily life, or denying your right to a return for what you do, means that you are talking about remaining in an ideal or imaginary state.

2. Psychologically, being open to explore and learn about what the feeling of “I”ness and desire for what you do implies observing the feeling of “I”ness and the associated greed, fear, affection, envy etc., which go together, and learning about it with the clarity of insight.

These two points indicate the fundamental difference between ignorance and intelligence, and there is no insight into this in the *Gita*, the *Vedas*, *Vedānta* and so on. They treat the “I”ness or observer as separate from fear, anger, affection etc. or the observed, they see the observer as permanent, timeless, and attaching ideas of the *ātmā* and *Paramātmā* to it, place the observer on a high pedestal with ideas of its being the unattached, non-doer etc., but they do not see that the observer is a part of the observed, that the observer is the observed, and so they cannot gain insight into observation, emptiness and the ending of time and sorrow.

Views on high and low births in the *Gita*:

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शुद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ (9:32)

mām hi pārtha vyapāśritya ye’pi syuḥ pāpayonayaḥ,
striyo vaiśyās tathā śudrās te’pi yānti parām gatim. 9:32

For those who take refuge in me,
O Partha, though they are lowly born,
women, vaishyas as well as shudras,
they also attain to the highest goal.

To expose those things or texts that delude in the name of religion, to highlight what is wrong, is always needed. Being serious but mentally at ease, enquire into truth or the way, as observation itself is enquiry, and we should help to keep it awake among people. Therefore, *sādhus* and the wise don't involve themselves in debate or *shāstrārtha*, instead, they favour dialogue or *satsang*.

hindū dhyāve rāma kū, musalamāna khudāya,
jogī dhyāve alakha kū, kahai kauna patiyāya. (69)

The Hindu meditates on Ram,
the Muslim on God,
the yogi meditates on the alakh, free from the known,
tell me, who will believe what I say? (69)

— Gorakh.

Thus we say, "Āge āge Gorakh jāge!"
"Let us keep the way of intelligence awake!"



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 290

च्यारि कला विचारि बैसिबा, चारि असी मे दीठा।
भनत गोरषनाथ आप विचारंत, तव अम्रित पीबा मीठा॥

Sit and reflect on the four kalas,
the four are beheld in this way.

Gorakh Nath says, seek within,
then drink sweet ambrosia. (290)

This is GG#271.

जैसे हमने सबदी 89 में देखा है, मेत्ता, करुणा, मुदिता, उपेक्खा यह अनंत गुणों से युक्त चार कला है, जिनके साथ हम सुख, दुख, पुण्य, अपुण्य इन भावनाओं से प्रतिसाद करते हैं। इस तरह प्रतिसाद करने से, जो नाम-रूप जगत के सर्वोच्च व मंगलकारी गुण है, हम उनका आस्वादन करते हैं, और सभी जीवों के लिए मंगल कामना करते हैं। यह काल क्षेत्र की साधना है, जो यथाभूत सत दरसण व चित्त अवधून्नन से अलग है। अच्छा, चित्तावधून्नन में दया-करुणा परिलक्षित होती है।

As we saw in sabadi 89, the four kalās of infinite merit are loving kindness (*mettā*), compassion (*karuṇā*), sympathetic joy (*muditā*), and equanimity (*upekkhā*), with which we contemplate feelings of happiness (*sukh*), suffering (*dukh*), righteousness (*puṇya*) and unrighteousness (*apuṇnya*). Reflecting in this way, which is the highest and most meritorious capacity in the field of thought and time, we enjoy them and so wish good will for all beings. This is a *sāadhanā* in the field of time, other than observation of what is and emptying, though, indeed, emptying implies our being compassionate as well.



सुरति : *SURATI*

सुरति यह शब्द सु- "सम्यक, सहज, अच्छा" और रति (रत) "रत होना, साथ होना" ऐसे बना है। सो, जो भी चीज हम किसी मत मतांतरों के बोझ बगैर जीवन प्रवाह जैसा गतिमान है वैसा पल पल जानते रहने में सहायक होती है, जिसके साथ हम सहज होते हैं, उसे सुरति कहा जा सकता है। सुरति यह ध्यान में, भावपवनां- दरसन में, सहायक होती है। उध्वोष्ठ मध्य बिंद, सांस, सबद, नाद, नूर आदि सुरति है। दुसरे शब्दों में, सुरति से रहना ध्यान से जीना है। कहने की आवश्यकता नहीं कि , पवनां -द्वेष भी भाव-राग ,हंभावधन भावनां सह अ-भयानुरागादि ऋण ही होते है; और जो भी भाव-पवनां उभरते है उनका यथावत दरसन, सुरति सह या जैसे भी स्थिर सजग, ध्यान है।

Surati is composed of *su* "right, easy, good" and *rati* (*rat/rata*) "to be with, being with". Thus, anything that helps us to remain awake moment to moment, alert, to the movement of life as it is, with ease, without any burden of ideas and ideologies, can be said to be a *surati*. *Surati* is a help in meditation for observing feelings and sensations. The ever vibrating sensation in the centre of the upper lip, breathing, *sabada*, *nād*, *nūr* etc. are *suratis*. In other words, to live by *surati* is to be meditating.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 272

दरसण माई दरसण बाप, दरसण माहीं आपै आप।

या दरसण का कोई जाणै भेव, सो आपै करता आपै देव॥

Observation is the mother,
observation the father –
through observation it all happens.
Whoever knows the mystery of this observation,
he is the doer, he the god. (272)

दरसण अर शुन्यता (सुनि, #231) यह योग अर अवधूनन है; यह दोनों भोग वा तण्हा नहीं है, भव नहीं है। तथापि, पवन (#147) बिंदु (#148) अर अगनि (#191) यह भोग वा तण्हा की बात हो सकते हैं, वा यह योग व अवधूनन में परावर्तित भी हो सकते हैं। जो भी दरसण से जीता है, अलख संग्यान सूं आसति दरसण से जीता है, वह दरसणी (दर्शनी वा दार्शनिक) है, ध्यान-ग्यान संग्यानी है।

Observation and emptiness (#231) are yoga and emptying; and these are not *bhoga* or desire, they are not becoming. However, *pavana* (#147), *bindu* (#148) and *agani* (#191) can be either *bhoga* or desire, and can be turned into yoga and emptying. Whoever lives by observation, and with the *alakh* sense observes what is, he or she is a *darshani*, one having insight into meditation and wisdom.



दरसण बोध

THE UNDERSTANDING OF OBSERVATION

अहं भाव अछै द्रष्टा,
च्यंत केंद्र संगै तृष्णा।
भय क्रोध दयादि पवनां च्यंत गति,
येही दृश्य अछै येही पिंड सति ॥1॥
द्रष्टा दृश्य भासै अलग,
परि अंतरी चलै सलग।
द्रष्टा दृश्य अलग जो चलै,
काल गति भव बनता चलै ॥2॥
द्रष्टा दृश्य अछै येह सत जानै,
आसति दरसण पथ निरवाणै।
उर्ध्व ओष्ठ मध्य बिंद नाद नूर सांस सुरति,
अथ भावनां वेदनां दरसण अर कालांत इति ॥3॥
कहै गोरख जिद्दू अर बुद्ध,
जे खोजै ते होई सिद्ध।
दरसण परम तत्त सुनि ध्यान,
दरसण खोलै अलख विनांणं ॥4॥

अलख अकथ संग्यान,
विनांणं विसुद्ध ग्यान।
सूरजनाथ दरसन जाने,
आगे आगे गोरख जागे ॥५॥

The feeling of "I" is the observer,
the centre of thinking with desire;
the stream of fear, anger, mercy etc. and thinking,
this is the observed, this truly the self. (1)

The observer and the observed seem to be separate,
but inwardly they are together;
when the observer and the observed are separate,
time and becoming keep going on and on. (2)

The observer is the observed! Know this truth.
Observation of "what is" is the path to nirvana.
The sensation at the centre of the upper lip, nād,
nūr, breathing are suratis;
so, the observation of feelings and sensations, is
the ending of time. (3)

Gorakh, Jiddu and the Buddha say,
those who search are siddhas.
Observation is ultimate truth, emptiness, meditation;
observation reveals alakh vigyan. (4)

Alakh is unspoken understanding,
vigyan is pure knowledge.
Surajnath knows observation,
let intelligence go awake! (5)



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 7

हसिबा षेलिबा रहिबा रंग, कांम क्रोध न करिबा संग।
हसिबा षेलिबा गाइबा गीत, दिढ करि राखि अपनां चित।।

Laugh, play and live joyfully,
have nothing to do with lust, anger;
laugh, play, sing your song,
and keep your mind steady. (7)



पथ का मर्म THE HEART OF THE PATH

अलख
Open

योग अलख विग्यान! — गोरख।
Yoga is open minded pure knowledge! – Gorakh.

अलख निरंजन अवधू! — सिद्ध।
Freedom from the known, no stain, mental
cleansing! – Siddhas.

विज्ञान संग्या वेदना, तदि तण्हा वा दरसण! — बुद्ध।
Cognition, recognition, sensations, then desire or
observation. – Buddha.

शील संवेग ध्यान!
Virtue, silent passion, meditation!

अहंभाव द्रष्टा। भयानुरागादि दृश्य।
द्रष्टा दृश्य अछै! इह पिंड खोजै॥

The feeling of "I"ness is the observer;
fear, affection – they are all what is observed.
The observer is the observed!
Seek within the body.

"अस्ति" (भावनां-वेदनां) दरसण वै ध्यान।

Truly, observation of "what is" (feelings, sensations) is meditation.

दरसण : सुरति सह मुख-मंडलसूं भाव-पवनां दरसण।

Observation: along with surati, observation of feelings and sensations in the face and the body.

सुरति : उध्वोष्ठ मध्य बिंद/सांस/सबद/नाद/नूर... सूं

सहज पल पल चेतनता।

Surati: moment to moment awareness of the ever vibrating sensation in the centre of the upper lip, or of the breath, the word, sounds or nād, of colours or nūr...

अथ द्रष्टा दृश्य भेदान्त। बोध पिंड कालान्त।

खोज अलख विग्यान। आरंभ घट परिचय निष्पत्ति॥

Thus, ending the separation of the observer and the observed,

insight into the self and the ending of time;

enquiry into alakh vigyan;

beginning, "I"ness, no ignorance, beyond.

अलख अजाण संग्यान। विग्यान विशुद्ध ग्यान।

अहार विहार ग्यान ध्यान। गोरख सबदी अलख

विग्यान॥

The alakh sense is the understanding of innocence;
vigyan is choiceless, pure knowing;
food, activities, knowledge and meditation.
The Sabadis of Gorakh speak of alakh vigyan.

अधरा धरे विचारिया। धर या ही मैं सोई।
धर अधर परचा हुवा। तब उती नाहीं कोई॥

— गोरख।

Seek emptiness in the manifesting;
truly – it is there in the manifesting.
When the manifesting and emptiness are beheld,
then there is nothing. – Gorakh.

गोरख जिद्दू बुद्ध। दरसन शुन्य सिद्ध।

Gorakh, Jiddu, Buddha: observation, emptiness
and accomplishing.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 231

सुनि ज माई सुनि ज बाप, सुनि निरंजन आपै आप।
सुनि कै परचै भया सथीर, निहचल जोगी गहर गंभीर॥

Emptiness is the mother, emptiness the father,
emptiness is flawless by itself.
Calm comes with insight into emptiness,
motionless yogi: profound, dignified. (231)



योग : गोरखनाथ अर पतंजलि

योग अलख विग्यान! — गोरख।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः! — पतंजलि।

गोरखनाथ योग की व्याख्या "योग अलख विग्यान" ऐसे करते हैं। मतलब, ग्यात की दैनंदिनी में जगह व चैतसिकता में उसकी मर्यादा समझकर ग्यात से मुक्तता (भले विचार शृंखला चलती हो), यह अलख संग्यान सूं बाला होना है, जो मानस-चेतना की विशुद्धता है, जिसमें अपने आप से बोधि जागरण व चित्त अवधूतन चलता है। सो अलख संग्यान सूं ध्यान की अगनि बोधि धारा है, शील-संवेग अर दया-करुणा समाई है।

पातंजलयोगसूत्र के अनुसार योग की व्याख्या "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" ऐसे है। मतलब, प्रमाण ग्यान, विपरीत ग्यान, पर्यायी ग्यान, मानसिक निद्रा व स्मृति (रेकॉर्डिंग) का निरोध। अर्थात्, यह सब काल गामिता है, और काल का निरोध ही चित्तवृत्ति निरोध है, जो ध्यान की अगनि (presence of the mind) में संभव है।

साथ ही यह भी जाने कि, बुद्ध जैसे ही, गोरख, पतंजलि व जिद्दू में आत्मा यह काल चेतना है, सुख-दुःखात्म है —

पंथ चलंतां आतमा मरै। — गोरख।

विशेष दर्शिन आत्म भाव भावना निवृत्तिः। — पतंजलि।

पतंजलि में अपने तरह से पथ की स्पष्टता होते हुए भी वह क्रियायोग, प्रणव वाचक इश्वरनाम कल्पना आदि विचार पैदाइश मसाला भी

परोसते हैं, जिसमें उलझने से कोई भी साधक शायद ही सीधे पथ पर आ जाय।

अर्थात्, बुद्ध को समझें बगैर पतंजलि को सम्यक रूप से नहीं समझा जा सकता, क्योंकि पतंजलि में बहुत सारी बातें बुद्ध की ही थोड़े में हैं; और बुद्ध वा बोधि पथ की समझ में आपको पतंजलि की आवश्यकता नहीं है। बुद्ध, गोरख, जिद्दू जैसे महासिद्धों में विचार तृष्णा काल की बात समझ कर कालातीतता वा काल दुख अग्यान के अंत की सीधी देषना है।



YOGA: GORAKHNATH AND PATANJALI

joga alakha bināṇa. — Gorakh.

Yoga is choiceless, pure awareness! — Gorakh.

yogaścitta vṛtti nirodhaḥ. — Patanjali.

Yoga is uprooting of mental instincts. — Patanjali.

Gorakhnath says the right sense of yoga is, "*Yoga alakh vīgyān!* Yoga is choiceless, pure awareness!", and "*Yogi alakh vīgyānī!* A yogi is an *alakh vīgyānī!*" That is, a yogi is the one who lives with the *alakh* sense, which is understanding of freedom from the seen, the known, by knowing its place in daily life and its limit otherwise (despite chattering), and observation of the stream of consciousness as it is. Thus, observation is the ending of time and sorrow, is emptying and deepening into life per se.

Patanjali defines yoga as *chitta vrutti nirodha*, that is, stopping or uprooting of the mental instincts of proven knowledge (*pramāna*), false knowledge (*viparyaya*), alternate knowledge (*vikalpa*), sleep (*nidrā*) and recording (*smṛtiḥ*), all of which is movement of our consciousness in time — whereas right meditation, the fire of observation, is the ending of time. *Chittavrtti nirodh* implies the ending of time.

pantha calantā ātamā marai.

The soul is weary from wandering.

— Gorakh, in Sabadi 212.

viśeṣa darśina ātma bhāva bhavanā nivṛtṭiḥ.

A man of insight is free of the sense of "I"ness.

— Patanjali, 4/25.

That is, like the Buddha, the ātmā or soul is but time matter of pains and pleasures in Gorakh, Patanjali and Jiddu.

Patanjali's *Yoga Sutras* contain a kind of clarity of the path, but he also presents thought produced ideas like *kriyāyoga*, idea of *pranava* as a descriptive of God etc., and when a *sādhak* or seeker involves with these he or she would hardly come onto the straightforwardness of the path.

Well, you can hardly understand Patanjali unless you understand the Buddha because Patanjali's *Yoga Sutras* borrow most of its material from the Buddha; and there is no need for you to refer to Patanjali to understand what the Buddha says. The sayings of Buddha, Gorakh, and Jiddu contain the understanding of thought, desire, time, and the ending of time, sorrow and ignorance, rightly, straightly.

मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा आदि का ढोंग, व धरमनाम धंधा

किसी मूर्ति में तथाकथित रूप से प्राण प्रतिष्ठा वा सो मूर्ति स्थापना में उलझने से पहले वास्तव में प्राण क्या है यह समझना जरूरी है। सो देखे कि, यदि आपके उंगली में स्पर्श आदि वेदना का महसूस होना नहीं है, तो उस उंगली में प्राण नहीं है; और उस उंगली को डाक्टर सीधे काट भी सकते हैं ताकि बाकी शरीर के प्राण को बचाया जा सके। सो मूलतः वेदना, मतलब भाव-पवना का महसूस होना, प्राण है। और सारे शरीर से वेदनाओं का समाप्त होना प्राण गमन है, मृत्यु है। अथ गहराई में जाने कि —

वेदनां प्रति तृष्णा, काल दुख अग्यान गति।

वेदनां प्रति ध्यान, काल दुख अग्यान इति॥

मतलब, जैसे सिद्ध-बुद्ध समझाते हैं, वेदनां के प्रति ध्यान (attention), या भाव-पवनां दरसण (observation), यह भाव-पवनां सह अहं का मीठा मरणा है, जो काल अंत प्राण गति है।

सो जाने कि, वैदिकादि मंत्रोच्चारण के साथ प्राण प्रतिष्ठा या मूर्ति स्थापना के नाम पर जो आडंबर किया जाता है, असल में उस सब में वैचारिक काल कचरा उस मूर्ति के साथ एक प्रकार से मिलाया जाता है; एवं वह मूर्ति, जैसे भी, वर्णाश्रम उच्च-नीच सामाजिकता के पिशाच धरमी वैचारिक कचरे के साथ आगे चलती जाती है, जो सामाजिक

प्रदुषण का एक हिस्सा होता है। सो इस सब में, आम जनों को धरम के नाम पर भ्रमित करते हुए, धंधा या रंजन तो खूब किया जा सकता है, पर इसमें समझ नहीं बल्कि उलझन है। तथा ऐसे में धरमनाम मूढता के कारण, या थान मान की आस में कुछ साधू वा नेतागण सह, उलझने वालों का जमावड़ा हो जाय आश्चर्य नहीं है। किसी मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा के नाम पर, मंत्रोच्चारणादि मनमुखी के साथ, वैदिकादि वैचारिकता यह सीधे साइड कर देने की बात है, इसे समझिये।

ऐसे ही बनवा बनवी के साथ ज्योतिष शास्त्र, वास्तु शास्त्र, वास्तु शांति, नामकरण, मृतक पिंड दान, श्राद्ध, पितर शांति आदि धरमनाम धंधा बातें हैं। ऐसी बातों में उलझना विडंबना बा, काल दुख अग्यान गति बा।

भाव-पवनां-वेदनां अनित्य धरमी है, अपने आप में काल तत्त का हिस्सा है। पर अलख संग्यान सूं बाला होय (with freedom from thought, the known, by knowing its place and limit, and so being with innocence) वेदनां या भाव-पवनां का दरसण, नाद/बिंद/वेदनां की पल पल यथाभूत जान (awareness), यह तृष्णा व काल गामिता नहीं है, बल्कि कालातीतता है। मतलब, presence of the mind निरंजन तत्त है, जिसमें अपने आप से बोधि या ब्रह्म अगनि का जागना हो चित्त अवधूनन चलता है। अलख निरंजन अवधू! — यह सत धरम संग्यान की तत्त दरसणी वा तत्त ग्यानी (philosophical) परिपूर्णता है।

सो किसी मूर्ति में तथाकथित रूप से प्राण प्रतिष्ठा की संकल्प पूर्ति करनी भी हो, जबकि मूर्ति व वास्तु आदि का बनना यह सब प्राण का हिस्सा

है, इसमें अनेकों का श्रम या प्राण लगा हुआ है, तो उस मूर्ति को समता बंधुता के साथ कुछ मनुष्यों (स्त्री-पुरुषों) के हाथों, सामान्य सफाई के साथ, होश पूर्वक (attentively), सहज स्पर्श आयोजन करवाने से शुद्ध प्राण प्रतिष्ठा की संकल्प पूर्ति कियी जा सकती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि, ध्यान ग्यान संग्यान में किसी भी मूर्ति, मंदिर आदि पर अवलंबन की कोई जगह नहीं है।

गोरख सबदी 303:

अभच्छ्रया इमरित सबदका पाणी, षेदा षेदी रगत्र करि जाणी।

नाथ कहै यह ग्यान अनूप, देषति द्रष्टि न पडिये कूप॥

आप ड्राइविंग, गाड़ी-तंत्र, ट्राफिक नियम आदि सिख कर, कुछ तयारी कर, गाड़ी चलाते हैं, अच्छे ड्राइवर होते हैं। मगर इस सबके बावजूद ड्राइविंग करते समय एक सेकंड के लिए भी आपका ध्यान (attention) हटता है तो हादसा (accident) होता है। ध्यान की कोई क्रमिक सिख (gradual learning) नहीं होती; मतलब, किसी तरह से ध्यान के बारे में विचार कर आप ध्यान पर आते है ऐसा नहीं होता। तथा कोई भी ग्यान यह ध्यान का पर्याय नहीं होता। अनावधान (non-attention) के प्रति चेतन होते जाना ही ध्यान में आते रहना हैं। ध्यान की समझ यह चेतना में परिवर्तन (transition) नहीं, बल्कि परावर्तन (transformation) हैं, मूलभूत बदल है, जो विचार को हावी होने से रोकती है। ध्यान यह किसी भी ग्यान का इस्तेमाल कर सकता है, पर इसके विपरीत नहीं। दुसरे शब्दों में, अंतर्जगत में भाव-पवनां के साथ,

वा शरीर के अणु अणु में उभरने वाली वेदनां तरंगों की प्रचंड गति के साथ, ध्यान के बजाय विचार से चलना यह काल दुख गति है, अग्यान है। धरम या अध्यात्म के नाम पर अनेक मार्ग होने का आदर्श यह काल दुख अग्यान है। विचार की दुनियादारी में जगह है, पर अंतर्जगत में, ध्यान में, विचार की कोई जगह नहीं है, इस बात को खूब समझे।

सिद्ध-बुद्ध संग्यान यह ध्यान-ग्यान पथ हैं, सत धरम बात हैं, जो समझने के लिए ऐसा मुष्किल नहीं हैं। आंखें देखती हैं और कान सुनते हैं, ऐसे नहीं होता कि किसी की आंखें सुनती हो और कान देखते हो, यह धरम हैं, सूझ की एक बात हैं। अलख संग्यान सूं सूझ-बूझ के साथ धरम की अनंत गहराइयां ध्यान-बोधि में खुलती जाती हैं।

आगे आगे गोरख जागे!



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 68

हिंदू ध्यावे देहुरा, मुसलमान मसीत।

जोगी ध्यावे परमपद, जहाँ देहुरा न मसीत॥

The Hindu meditates in a temple,
the Muslim in a mosque;
the yogi meditates on the absolute path,
where there is no temple or mosque. (68)

Param pada or param tatta:

दरसन परम तत्त सुनि ध्यानं।

दरसन खोलै अलख विनांगं॥ — सूरजनार्थ।

Observation is ultimate truth, emptiness, meditation;
observation reveals unseen pure knowledge.

— Surajnath.



HYPOCRISY OF IMPARTING LIFE IN AN EFFIGY, AND BUSINESS IN THE NAME OF RELIGION

It is important to know about what *prāṇ* or life actually is before we get involved or bogged down in the so-called ritual of imparting life in an effigy, image or some *mūrti*.

Let us look at, for example, what happens when you don't feel any sensation or touch in one of your fingers. There would be no *prāṇ* or life in it and a doctor may simply amputate that finger to save the life force in other parts of the body. So basically, sensations, or to feel sensations and feelings, are life. And the absence of sensations in the body as a whole is the departure or end of life from that body.

Thus, know in depth that desires toward sensations are time, sorrow and ignorance. Attention toward sensations is the ending of time, sorrow and ignorance. That is, as Siddhas and Buddhas explain to us, observation of sensations or feelings-sensations, with the *alakh* sense, is dying of the self that which is sweet, and which is the ending of time, sorrow and ignorance.

Furthermore, know that the hypocrisy of imparting life in some effigy or image, with *mantras-tantras* or rituals by *Vedics* etc., is actually imparting thought produced filth into that effigy or image in a way. Then that image goes on to become a center of devilish ideas of *varnāśram*, high and low births, castes etc., as a part of social pollution. A business or entertaining in the name of religion by misleading people could be done in all this and is delusion.

Therefore, if people because of their religious ignorance, or some leaders with their corrupted desires for position and respect, are seen gathering around such flawed practices, it is not surprising. Know that practices from *Vedics* etc. of so-called imparting life in images and so on need to be stopped altogether.

Like hypocrisy of imparting life in an image, there are business practices in the name of religion such as astrology, architecture based on beliefs (*vāstu-śāstra*); imparting of peace in a house (*vāstu-śānti*); naming of a baby (*nāmakaraṇ*), offering of food to the dead (*piṇḍa dāna*); death anniversary ritual (*śrāddha*), imparting peace to ancestors (*pitar* or *pitr śānti*) etc. Our involvement with such practices is but a part of time, sorrow and ignorance and is basically the wrong trend in society in the name of religion.

Feelings and sensations are changeable — impermanent by nature — and these are parts of energy in time. However, freedom from thought, the known, by knowing its place and limit, and so being with innocence, is the *alakh* sense. Thus, observation of feelings-sensations, or sounds and sensations, with skill and diligence, moment to moment, is not being in desire and time but it is to be awakening to timelessness. So, presence of mind is pure truth, *nirañjan tatta*, in which there is the awakening of *bodhi* or intelligence on its own from nowhere and the emptying of the mind. *Alakh Nirañjan Avadhū!* — this is philosophical completion of right religious sense out of observation (*darasan*).

Coming to the point, know that the energy or *prāṇ* of those persons constructing an image etc. is already imparted to

it. Further, you want to fulfill your thought of imparting life to an image as a special occasion or formality. Then, say, you may arrange an event for touching of the image by many men and women using their palms or fingers, one by one, while being attentive of the touch, and thus imparting pure life, *prāṇ*, into the image, with fraternity and equality with normal physical cleanliness.

Well, know that there is no place for temples, images, rituals, *mantras*, *tantras*, beliefs and so on in the understanding and working of meditation and wisdom.

Gorakh Sabadi 303:

abhacchya imarita sabadakā pānī, khedā khedī ragatra kari
jānī,
nātha kahai yaha gyāna anūpa, dekhati draṣṭi na paḍie kūpa.

The water of the word is ambrosia not yet drunk,
learn about pain and sorrows in the blood.
Nath says, this wisdom is peerless,
look, behold, don't fall in the pit.

You drive a car by learning driving skills, how a car works, traffic rules etc.; however, when you drive a car, if you miss attention for a second, you will have an accident. Attention cannot be learned and achieved by any gradual preparation, learning some methodology or science. Thought has no role in learning about and coming to attention. Attention can use thought and its skills in different fields, but not vice versa. Round the other way, inwardly, thought has no potential to behold the movement of feelings as they are and the

tremendous speed of sensational waves and learning life beyond the known. Understand this well, and realise the futility of different ways, traditions, beliefs in the name of religion.

The sense of siddhas and buddhas is the way of attention or meditation and virtue, which is not such a difficult thing to understand and to live with. Our ears listen and eyes see, and it is not that somebody else's eyes listen and ears see. That is the part of religion. In attention you are open to learning the infinite depths and mysteries of life.

Let's keep intelligence awake!



आदिनाथ, शिवलिंगादि बनवा-बनवी —

यह अग्यान काल दुख गति

शारीरिक, भौतिक स्तर पर हर जीव व वस्तुओं का उत्पन्न होना, कुछ चलना व नष्ट होना यह समझा जा सकता है; पर चैतसिक स्तर पर चेतना की कोई शुरुआत नहीं। तथा हर जीव पूरे अस्तित्व के साथ जुड़ा होते हुए स्वरूप गति होता है, कोई किसी का अवतार नहीं। ध्यान-बोधि से चित्त अवधूतन ना चले, तो संबंध के आइने में जुड़ी इस काल-चेतना व अहं का, भव-सागर का, कोई अंत भी नहीं इसे समझे।

ये तथाकथित आदिनाथ, आदियोगी, हिरण्यगर्भ, महादेव, शिव-शंकर, महाकाल, भोलेनाथ, शंकर-पारबति, शिवलिंग, ज्योतिर्लिंग आदि बनवा बनवी क्या हैं? क्या शिव-लिंग यह स्त्री-पुरुष वा देवी-देवता के जननेन्द्रियों का आपस में मिला उत्पत्ति मूल का प्रतीक है? योनी-लिंग पूजन ओशो रजनीश के संभोग से समाधि जैसी या उससे भी ज्यादा गंडगोल बात दिखती है। जननेन्द्रियां किसी की भी हो, प्रायवसी की बातें हैं; दोनों का संभोग और भी प्रायवसी है, इसके प्रदर्शन वा पूजन की शोभा व जस्टिफिकेशन नहीं।

शिवलिंग को कोई शुन्य का प्रतीक कहे यह विचार का कचरा है। शुन्य के किसी भी प्रतिकात्मकता से शुन्य की समझ नहीं जाग सकती। यह कोई उर्जा श्रोत नहीं है। अपने घट-पिंड की उर्जा को समझने के बजाय ऐसे किसी शिवलिंग को उर्जा का श्रोत बताना, मानना यह विचार की

पैदाइश धरमनाम अंध बातें हैं, सत से दूर होकर कल्पना में रमणा है। इसे कोई प्रकाश पूंज कहे यह बोधि के बजाय काल विचार व दुख अग्यान में उलझना है। किसी लिंग, शिवलिंग, शीष, श्रीयंत्र, ताबीज़, गंडा आदि में कुछ शक्ति तरंगों का अनुभव यह विचार-शक्ति के कान्सन्ट्रेशन से ज्यादा नहीं होता। समझ का लिंग नहीं होता। जीवन की उत्पत्ति व गति का मूल स्त्री-पुरुष वा किसी देवी-देवता का संभोग नहीं है। "मूल अगोचर।" — गोरख।

चाहे इसके साथ जो भी बातें जोड़ दे, इसमें ध्यान-बोधि व धरम की सम्यक समझ नहीं। आगे, यह कब, किस प्रोपागंडा से आदिवासियों की देवता हुई? कब व कैसे विचार पैदाइश शिव-शंकर, आदिनाथ, आदियोगी, आदिगुरु यह सिद्धों का भी गुरु, आदिगुरु हो गया? बुद्ध के अवतार होने जैसे प्रोपागंडा से? कोई आदि वा अंतिम योगी/गुरु/नाथ नहीं होता। गोरख सीधे कहते हैं

गुदड़ी जुग च्यारि तैं आई, गुदड़ी सिध साधिकां चलाई।

गुदड़ी मैं अतीत का बासा, भणंत गोरखनाथ मछिंद्र का दासा॥

— गोरख।

अत्ता ही अत्तनो नाथो, अत्ता ही अत्तनो गति ।

अत्ता ही अत्तनो नाथो, को ही नाथो परो सिया॥ — बुद्ध।

शिव = प्रेम, मंगल, auspicious, love; लिंग = संकेत, sign, mark; पिंड = a body, mass. सो कोई फूल, ध्यानी मूर्ति, साफ मकान, ताजा पका अन्न, कार्यालय, पेड़, पहाड़, नदी, तालाब, समाधि, मजार, स्तूप, ध्यानी

मूर्ति, सूर्योदय आदि शिव वा मंगल है, शिव पिंड है, मांगल्य लिंग है।
सम्यक ध्यान अर चित्त अवधूतन यह शिव है, मंगल है।

बहुत संभव है कि, बौद्ध स्तूपों का विकृत स्वरूप है ये तथाकथित शिवलिंग। ऐसे किसी बातों में विश्वास करने से कोई कुछ अनुभव करते हैं, तो वही अनुभव करता है जिसमें विश्वास हैं, और कुछ नहीं, जो उनके अनुभवों को अयोग्य सिद्ध करता है। असल में ये ज्योतिर्लिंग, धाम, शक्तिपीठ, तीर्थादि धर्म के नाम पर सामंती धंधा केंद्रों से ज्यादा नहीं है।

हरी हर शिव-शंकर अल्ला पारबति, विचार उपज धर्म काल दुख गति।
काली काल महाकाल यै सब काल, देखे, भव दुख अग्यान गति काल।।

भ्रमित होना कुदरत को मंजूर नहीं। कोई खुशामती देवतां वा इश्वरनाम संकल्पनां किसी की चैतसिक दुख निर्जरा नहीं कर सकते। ऐसे में धर्मनाम अग्यान फैलता है, जो समझना काँमन सेंस की बात हैं।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 287

नऊ द्वार मल संग्रहें, पार ब्रह्म तहां केंसें रहें ।

ब्रह्म अपंडित अधरा धारी, सो ब्रह्म क्यों कहिये मेल मंझारी ॥

The nine doors contain impurities,
how does Parabrahma reside there?
The divine is an unbroken flow in emptiness,
why say that the divine is in the middle of impurities?
(287)

This is GG#261.

इस सबदी में सर्व खल्विदं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि आदि वेद-वेदांतिक मान्यताओं पर प्रश्न किया है। सिद्ध अपनी खोज में, ध्यान में यह साफ देखते हैं कि, जीवन की समग्रता में अलग अलग स्तर है, जिसे गोरखनाथ अपनी पहली ही सबदी में स्पष्ट करते हैं। दरसण की अगनि यह बोधि का निःशेष से (from nowhere) अपने से जागना है; और ऐसा नहीं कि आप पहले से बोधि है। दरसण यह अहं का अंत होना है। सिद्ध अपने अवधूत चित्त में परम् सत के बारे में स्पष्ट होते हैं, जिस बाबत वह सम्यक्ता से बोलना टाल देते हैं, जैसे #1 —

गगन-सिषर महिं बालक बोलै। ताका नाँव धरहुगे कैसा॥

This sabadi questions the *Vedas-Vedāntic* view that *sarvaṁ khalvidam brahma* “All this is indeed Brahma” or *aham*

brahmāsmi “I am Brahma” and so on. Siddhas in their enquiry and meditation clearly see that there are grades in life in existence as a whole (*astitva*). The fire of observation is the awakening of *bodhi* or divine fire from nowhere; it is not that you are already *bodhi*. Observation is the ending of the self. In their absolute emptying siddhas are aware of the supreme truth, which they avoid talking about or describing, as is declared in #1 –

High in the firmament the child speaks, who can name him?



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 2

अदेषि देषिबा देषि बिचारिबा, अदिसिटि राषिबा चिया ।
पाताल की गंगा ब्रह्मंड चढाईबा, तहाँ बिमल बिमल जल
पिया ॥

Behold the unseen, contemplate the seen,
keep your mind with the unknown.
Raise the Ganges below to the egg of Brahma,
for there the pure drink pure water. (2)

ब्रह्मंड का सीधा अर्थ मन-मगज है, जो संक्षिप्त स्वरूप में जगत की प्रातिनिधिकता है। सम्यक ध्यान में मन-मगज की चेतना शक्ति संग्रहित व उधोगामि होती है। ब्रह्मंड का जगत यह भी अर्थ है।

जो देखा जा रहा होता है, देखने की प्रक्रिया में होता है, वह अदेखा होता है, देखा हुआ नहीं। मतलब, नदी की धारा या भीतर पवनां-वेदनां गति हर समय नयी होती है, देखी जा सकती है, देखी हुई नहीं होती। देखी हुई याददाश्त होती है बस। सो अजानता से सहज चेतन रहने में निर्मल जल का, बोधि या ब्रह्म अगनि का, अपने से प्रकट होना होता है।

The egg of Brahma (*brahmāṇḍa*) simply means the brain, which is a representation of the world in condensed form. Attention, beholding, is the gathering, raising of the energy of the brain. *Brahmāṇḍa* may also mean the universe.

That which is being seen is, in the process of observing, unseen, not seen. That is, the flow of a river or the movement of feelings and sensations within is always new, it can be seen, it is not seen. What is seen is but a memory. Thus, remaining aware of the stream of our consciousness, with ease, is the awakening of emptiness, pure water or *bodhi*, on its own from nowhere.



सिद्ध सिद्धांत पद्धति —

गोरक्षनाथ के नाम पर एक प्रदुषित किताब

सिद्ध सिद्धांत पद्धति (SSP), जिसे विद्वत्जन अठारहवीं सदी में लिखी हुई किताब कहते हैं, यह सिद्धों के नाम पर, गोरक्षनाथ के मुंह में रखते हुए, वेद (SSP. 3/6 etc.), वेदांत (SSP. 1/44-49, 6/94-95 etc.), पतंजलि के अष्टांगयोग की कुछ व्याख्या (SSP. 2/32-39) आदि बनवा बनवी के साथ, वेद-वेदांत वा ब्राह्मणवाद की मनमुखी संकल्पनाओं से भरी हुई एक प्रदुषित किताब है यह साफ है। SSP. में आदिनाथ-जगतगुरु (SSP. 1/1) वा आदिनाथ-हिरण्यगर्भ, वर्णाश्रम-पुरुषसूक्त वा उच्च-नीच जन्म-जाति (SSP. 3/6), शंकर-पारबति (SSP. 6/114), हाथी-देवता गणपति (SSP. 6/115), ब्रह्मा विष्णू आदि देवी-देवता व विचार की पैदा कियी बातें शब्दाडंबर के साथ है, जो अलख विग्यान वा गोरख संग्यान सूं बाला होय यथाभूत सत दरसण अर चित्त अवधूनन से मूलतः अलग है। साधना के नाम पर SSP में आधार, लक्ष्य, चक्र कल्पना, आकाश के स्तर (SSP. 2/1-31) आदि ग्यात के साथ ध्यान के नाम पर ध्यास की बातें हैं; सम्यक रूप से ध्यान-समाधि की बात भी नहीं है, ध्यान-बोधि की बात दूर। ध्यान-समाधि से मतलब है विचार का धीमा होना या स्थगन; व ध्यान-बोधि से मतलब है अलख संग्यान सूं बाला होय यथाभूत सत दरसण अर चित्त अवधूनन, काल दुख अंत गति के साथ जीवन में गहराते जाना।

SSP. में आदेस वा आदेश को भी गलत तरह से व्याख्यायित कर (SSP. 6/94-95), वेद-वेदांत की लाइन पर, आत्मा व परमात्मा की एकता वा अहं ब्रह्मास्मि का निर्देशक कहा गया है, जो अहं के मीठे मरण मरने से मूलतः अलग बात है। अर्थात्, SSP. पर कथित रूप से आधारित *Philosophy of Gorakhnath*, by A. K. Banerjee, यह किताब भी बुद्धिविलास व शब्दाडंबर से भरपूर है, जिसमें नाथ पंथ अर गोरखनाथ को mould कर मैनेज करने की बातें हैं, जो सम्यक खोजी जल्द ही समझ जाते हैं। खोजी साधक वा सिद्ध झूठ को समझते, पर्दाफाश कर साइड करते, सत का अलख जगाते चलते हैं।

सिद्धों की शब्दावली (terminology) अलख विग्यानी है। यह कल्पना रमण वा मनमुखी बातें नहीं हैं; किसी विशिष्ट मानुस, आदर्श वा मान्यता को महत्व देते हुए व्यक्ति वा किताबी अधिकारिकता से होना नहीं है; और यह समझना महत्वपूर्ण है। तथा यह समझना भी जरूरी है कि, धरम के नाम पर किताबी अधिकारिकता वाले, सो मानसिक कंडिशनिंग में जीने वाले बुद्धिजीवी, पुरोहित आदि, सिद्धों-बुद्धों के शब्दों को हाइजैक कर, उनके साथ अपनी मान्यताओं की झूठमूठ बातें जोड़ कर, आत्मा, परमात्मादि अहंतोषी कल्पनाओं में उलझाकर, अन्यथा प्रचारित करते रहते हैं।

नाथ आदेस वा आदेश इस शब्द का प्रयोग एक दुसरे के मिलने या विदाई के समय नमन, अभिवादन के रूप में करते हैं, और साथ ही यह एक दूजे

को ध्यान की याद देते लेते रहना भी है। शब्दशः, आदेश का अर्थ अनुशासन, संतुलन, नियमन, तथा नाथ होना है — ध्यान यह अनुशासन, संतुलन, नियमन व नाथपन है। मछिंद्र-गोरख बोध में आदेस/आदेश की व्याख्या इस तरह से कियी गयी है :

मछिंद्र : अवधू आदेस का अनूषम उपदेस, सुंनि का निरंतर बास।

सबद का परचा गुरू, कथंत मछिंद्र नाथ॥ 6॥

— गोरख-बानी, मछिंद्र गोरखबोध।

सनातन, भगवान यह शब्द बुद्ध के गढ़े, व्याख्यायित कर बार बार इस्तेमाल किए हुए हैं; वेदों को इन शब्दों का पता नहीं है। भले ऋग्वेद में एक बार भगवान शब्द भाग्यवान, lucky इस अर्थ से है; और सनातन यह शब्द आखिरी अथर्ववेद वेद में एक बार (भाष्य में) आया है, अर्थात् बुद्ध से उठाया हुआ। तो यह लोक-परलोक आस कालांध वैदिक परंपरा कब व कैसे सनातन धर्म हो गयी? और अब हिंदू? भ्रमित होना कुदरत को मंजूर नहीं।

भग्ग रागो भग्ग दोसो भग्ग मोहो अनासवो।

भग्गस्स पापका धम्मा भगवा तेन उच्चति॥

— बुद्ध।

न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीधा कुदचनं।

अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनंतनो॥

— बुद्ध।

अलख, निरंजन, अवधू यह शब्द भी वेदों में नहीं है, जो नाथ या सिद्ध पंथ का मूल (core) संग्यान है। भले नाथ यह शब्द वेदों में है, पर वह पिता, पति या काल्पनिक देवता वा इश्वर के नाम पर सनाथ, अनाथ होने के अर्थ में है; चैतसिकतः अत्ता हि अत्तनो नाथों के अर्थ में या जगतगुरु मन ही मन देख इस संग्यान से नहीं यह समझना महत्वपूर्ण है, जो वेद-वेदांतिकता के ग्यात गामिता में कहीं भी नहीं है।

गोरखनाथ का समय नौवीं-दसवीं सदी है। तथा अलख संग्यान के साथ गोरखनाथ की सबदी सत की देषना करते हुए है, और सिद्ध सिद्धांत पद्धति (SSP) जैसी किसी भी किताबों का झूठ व व्यर्थता सहज उजागर करती है। जैसे —

गोरख सबदी 173

दाबि न मारिबा खाली न राखिबा, जांनिबा अगनि का भेव ।

बूढी हीं थै गुरबानी होइगी, सति सति भाषंत श्री गोरख देव ॥173॥

Don't try to suppress the mind, don't keep it vacant.

Learn the mystery of fire.

It is very ancient and emerges as the guru's teaching.

True, it is true, says Gorakh Dev. (173)

भौतिक या शारीरिक रूप में, हर वस्तु या जीव की, भले वह पेड़ पौधे है या ग्रह तारे, मनुष्य है या अन्य जीव, इनकी कोई शुरुआत, कुछ जीवनकाल व अंत होता है। तथापि, चैतसिकतः, चेतन जीवों में, चेतना की कोई विशिष्ट शुरुआत है ऐसा नहीं होता। हमारी चेतना, जो गहराई

में सामुहिक प्रवाह है, व्यक्तिशः अलग नहीं है, यह दैनंदिन जीवन व मृत्यु में, अनेकानेक जीवों में, ज्वार भाटे की तरह भीतर बाहर होते अनंत काल गति है, जिसकी कोई शुरुआत नहीं; और यदि हमारे भीतर से, ध्यान की अगनि में चित्त अवधूनन होते, इसका अंत नहीं होता है, तो यह ऐसे अनंत भव में चलती जाना लाजमी है। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है, जिससे आदि व अंतिम, आदम व हव्वा, आत्मा व परमात्मा, हिरण्यगर्भ वा आदिनाथ, शिव-पारबति, लास्ट डे, कयामत, अवतार आदि मत-मान्यताओं की व्यर्थता देखी जाती है, यह जंजाल मन से समाप्त होता है।

हमारा चित्त प्रवाह, भाव-पवनां संस्कारों का उबलता, बहता प्रवाह, वास्तव में अनंत भुतकाल से (बूढ़ी, अनादि) होते हुए है, संबंध के आइने में ज्वार-भाटे की तरह भीतर-बाहर होते चलायमान है। यह कार्यकारण शृंखला से है, और आगे भी अनंत काल ऐसे चलने की क्षमता से है। दरसण की अगअ इसका खंडन व अवधूनन है। दुसरे शब्दों में, दरसण की अगनि यह काल का बोधि में अंत होना है, मतलब, बूढ़ी ही गुरुबानी होती है।



SIDDHA SIDDHANTA PADDHATI —
AN INTERPOLATION IN THE NAME OF
GORAKSHANATH

Siddha Siddhanta Paddhati (SSP), which scholars have dated it to the eighteenth century, is an interpolation that is put in the mouth of Gorakshanath. SSP contains mixture of ideas from *Vedas* and *Vedānt* (SSP. 3/6, 1/44-49, 6/94-95 etc.) or *Brahminism*, such as *Adinath-Jagatguru* (SSP. 1/1) or *Adinath-Hiranyagarbha*, the *varnashram* concept of high and low births (SSP. 3/6), Shankar-Parbati (SSP. 6/114), the elephant-god or Ganapati (SSP. 6/115), Brahma, Vishnu and other gods and goddesses, which are simply mind games and psychological blindness being tangled in verbosity, and which is totally different from the *alakh* sense, or the sense of Gorakhnath, of being insightful and working through the observation of what is. SSP also contains some interpretations of the *Ashtangayoga* of Patanjali (SSP. 2/32-39). In the name of *sāadhanā*, SSP contains the concepts of *cakras*, *ādhāras*, *lakṣyas* or aims, *vyoma* or sky and its grades etc. (SSP. 2/1-31), which is movement from and in the known. SSP teaches *samadhi* or the slowing or suspension of time, but being enmeshed with Brahminical concepts it does not describe correctly *samadhi* or *dhyān-samadhi*, since *dhyān-bodhi* or the ending of time is altogether different. *Samadhi* or *dhyān-samadhi* means the slowing down or suspension of thought by concentrating on the breathing or an image or a mental object, and thus attaining some power of *samadhi*. *Dhyān-bodhi* means being with the *alakh* sense and the skillful observation of what is, of the stream of feelings and sensations, and

emptying of the consciousness, which is the ending of time and sorrow and deepening into life beyond the known.

We find that *ādes* or *ādes*h is also misinterpreted in the *Siddha Siddhanta Paddhati* (SSP. 6/94-95), where it is stated that *ādes*h stands for the unity of the *ātmā* and *Paramātmā*, as in *Aham Brahmāsmi*, which is basically different from dying while living that is sweet and live having died. Further, *Philosophy of Gorakhnath* by A. K. Banergea, which is a text based on SSP, as said by Banergea, is same in motive with verbosity as SSP.

Ādes or *ādes*h is used by Naths to greet, wish, salute to each other on meeting or parting, and is a reminder about meditation to each other. Literally, *ādes*h means order, harmony, command and mastery – meditation is order, harmony, command and mastery.

In *Machindra-Gorakh Bodh*, *ādes* or *ādes*h is defined as:

Machindra:

avadhū ādesa kā anūṣama upadesa, sūni kā nirantara bāsa;
sabada kā paracā gurū, kathanta machindra nātha. (6)

Macchindra:

Avadhu, the significance of adesh is extremely subtle –
emptiness pervades uninterrupted;
experiencing the word is your guru,
says Macchindranath. (6)

— *Gorakh-Bānī, Machindra Gorakh Bodh.*

The time of Gorakhnath is around 9th century. And Gorakh Sabadi, The Sayings of Gorakh Nath, exposes any false texts like SSP etc. easily. Look —

Gorakh Sabadi 173

dābi na māribā khālī na rākhibā, jānibā agani kā bhevā,
būḍhī hī thai gurabānī hoigī, sati sati bhāṣanta śrī
gorakha devā.

Don't try to suppress the mind, don't keep it vacant.

Learn the mystery of fire.

It is very ancient and emerges as the guru's teaching.

True, it is true, says Gorakh Dev. (173)

Physically, there is a beginning, a sustaining and an end of every thing, be they plants or planets, humans or other creatures. However, psychologically, for conscious beings, there is no specific beginning of the consciousness of any being. Our consciousness, which deep down is a collective stream in time, in life (day to day living) and death (physical death) is an ebb and flow among vary many beings, not individually separated, but continually in flux without any beginning, and it could go on and on infinitely if there is no ending to it in the fire of observation, meditation. This is very important to understand, so that ideas and ideologies in the name of the first and last, Adam and Eve, *ātmā* and *Paramatma*, *Hiranyagarbha* or Adinath, Adiyogi, Shiv-Parvati, Last Day or *Qayāmat*, *avatār* and so on are seen to be faulty and cast aside.

Our consciousness, the boiling stream of mental impressions, of *bhāva-pavanā*, is rooted in the infinite past (*būdhī*, primeval) and moves in an ebb and flow. It is a chain of causation, and has infinite potential to go on and on. The fire of observation is its breaking and ending. The fire of meditation is the ending of time into *bodhi*, that is, the emptying of *būdhī* into *gurubānī*, intelligence.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 160

थान मान गुरु ग्यान, बेधां बोध सिधां परग्राम ।

चेतनि बाला भ्रम न बहै, नाथ की कृपा अषंडित रहै ॥

Guru's wisdom gives position and respect,
siddhas with insight into bodhi are unattached.
The youth who is aware is not confused,
Nath's grace is never broken. (160)

यह सबदी श्री गोरख गुटका में, GG#317, दुसरी लाइन बदल कर ऐसे
दियी हुई है :

थान मान गुरु ग्यान, बोध्यान बोध सिधान पार ग्रामी ।

आगमसुं देषिबा देसं, अचिंत्य नाथ कौं करिबा आदेसं ॥317॥

स्पष्ट है कि, इस सबदी का दुसरा भाग एक मिलावट है, प्रदुषण है, जिसमें
आगम, आदेस वा आदेश और अचिंत्य नाथ की बात बताई गयी है। यहां

आगम से वेद आदि किताबों का निर्देश है, जो अधिकारिक माने जाते हैं। तथापि, धर्म के मामले में किताबी अधिकारिकता को सीधे नकारते हुए गोरख हमें अलख संग्यान सूं वाला होय अपने शरीर के भीतर देखने के लिए कहते हैं।

This sabadi is given in *Shri Gorakh Gutka*, GG#317, but with the second line different:

thāna māna guru gyāna, bodhyāna bodha sidhāna pāra grāmī;
āgamasū dekhībā desā, acintyā nātha kākū karibā ādesā. (317)

Guru's wisdom gives position and respect,
siddhas with insight into bodhi are unattached.
Seek your land in the agamas,
adash to the thought-free Nath. (317)

The second half of the GG sabadi is apparently an interpolation. It introduces *āgam*, *ādes* or *ādes'* and the idea of a thought-free Nath. *Āgam* here refers to a body of religious books such as the *Vedas* etc., which are treated as authoritative. However, denying the authority of texts in religious matters Gorakh tells us to look within the body.



एक ऋग्वैदिक उद्धरण

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।

हमारे लिए (नः) सभी ओर से (विश्वतः)

कल्याणकारी (भद्राः) विचार (क्रतवः) आयें (आयन्तु)।

Let noble thoughts come to us from every side.

— ऋग्वेद, I-89-i

वास्तविकता यह है कि, हमारे लिए कल्याणकारी विचार कहीं और से नहीं आते, या किसी तरह से आकर भी सो नहीं पनप सकते; बल्कि कल्याणकारी विचार हमारी चित्त-चेतना की शुन्यता से अपने आप जागते हैं, या शुन्यता से ही चारों ओर से सहज खिंचे आते हैं। इसे समझना आत्यंतिक महत्वपूर्ण है। अर्थात्, यह मौलिक सूझ पूरे वैदिक curriculum में नहीं है। वेद-वेदांतिक जगत यह लोक-परलोक आस कालांध है, मंत्र-तंत्र का जंजाल है, अहं ब्रह्मा, सब कुछ ब्रह्म आदि मनमुखी बातों के साथ ग्यात गामिता से है, the known based है; धरम के नाम पर, आत्मा-परमात्मादि विचार पैदाइश संकल्पनाओं के साथ, किताबी अधिकारिकता व अवलंबन मानसिकता की चैतसिक अंधता से है, धर्माधिकारीता का ढोंग व राजभोग का जुगाड़ है। इसे माने नहीं, जाने।

कुछ आंशिक समझ (partial insights) की बातें आपको वेद, कुरान, गीता, बाइबल आदि कहीं भी मिल जायेगी; पर दैनंदिनी में ग्यात की

जगह व चैतसिकता में ग्यात की मर्यादा समझकर ग्यात से मुक्तता की बात, अलख संग्यान वा अनित्य बोध सूं शुन्यता व यथाभूत सत दरसण की आंतरिक समझ (fundamental insight), यह धरम तथा सामाजिकता के नाम पर किताबी अधिकारिकता वाली कानी आंख परंपराओं में पनप नहीं सकती।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 249

सिध संकेत बूझिलै अवधू, सति सति बोलै गोरष राणा ।

तीनि जणै का संग निवारौ, नकटा बूचा काणा ॥

Recognise the sign of a siddha, Avadhu,

King Gorakh speaks the truth.

Don't associate with these three types –

the shameless, the heedless, the biased. (249)

जब गोरख अपने लिए, या किसी गोरख संग्यानी स्त्री वा पुरुष के लिए, राणा, राव, राय कहते हैं, इसका मतलब हम समझते हैं कि, यह मन भीतर अपने आप में नाथ होने के साथ, अध्यात्म के साथ ही, अपनी दैनंदिनी व लोगों का, लोगों द्वारा, लोगों के लिए राजकाज के प्रति, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय चेतन व जिम्मेदार रहना भी है, जो वैदिक

वा कुरानिक जैसे किसी वर्ण, जाति, धरमनाम परंपरा में कानी आंख रखते हुए नहीं हो सकता।

एक नजर अपने अहं में, मान्यता, किताबें, परंपरा में, फसाएं रखनेवाला काना आंख आदमी सत को सीधी नजर देख नहीं सकता; सो सत को समझकर सत की बात नहीं कर सकता। अलख संग्यान, अजानता, मतलब चैतसिक बालापन, यह सीधी नजर है, साफ पाक बात है।

When Gorakh refers to himself, or says of any Gorakh, Rānā, Rāy, Rāo, king or noble man, woman, we take it to mean that, along with being a Nath inwardly, one must give thought to our state and its administration of, by and for the people, *bahujan hitāy bahujan sukhāy* "the well-being and happiness of the people".



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 237

ब्यंद ब्यंद सब कोई कहै, महा ब्यंद कोई बिरला लहै ।

इह ब्यंद भरोसे लावै बंध, असथिरि होत न देषो कंध ॥

Bindu, bindu, everyone goes on about it,
but rarely does someone find mahabindu.

Rely on this bindu, apply the bandha;
if unsteady, you cannot observe your body. (237)

बिंदु या वेदना के साथ तृष्णा का मिलना भव है या वीर्य पतन है; और बिंदु या वेदना के साथ ध्यान का मिलना यह महाबिंदु है, चित्त अवधूतन है। जब तक हमें दरसन, शून्यता व अवधूतन की अंतर्समझ नहीं आती, तब तक हम उस स्थिरता को नहीं पा सकते जो किसी भी बात पर निर्भर नहीं होती। दूसरे शब्दों में, शून्यता की अंतर्समझ महाबिंदु है। दरसन अर शून्यता की अंतर्समझ के साथ विचार शृंखला में, या कभी-कभी होने वाले वीर्यपात में, शक्ति का थोड़ासा व्यय यह सामान्य बाब है, ऐसी चिंता की बात नहीं है।

Bindu or sensations plus desire is becoming or loss of semen, while *bindu* or sensations plus attention is *mahābindu* and emptying. Unless we have insight into observation, emptiness and emptying, we cannot come to the steadiness that is not dependent on anything. In other words, insight into emptiness is *mahābindu*. With insight into observation and emptiness, a little spilling of energy in chattering thoughts or occasional loss of semen are normal, and are nothing to be worried about.



सेक्स (काम, कंद्रप) व ब्रह्मचर्य

सेक्स भावनाओं (काम या कंद्रप) से मन में जलते उलझते रहना, व इन्हें समझे बगैर, साथ-साथ ब्रह्मचर्य के आदर्श की मूढता लेकर जीना, यह सब क्या है इसे देखना समझना महत्वपूर्ण हैं। भारत में ब्रह्मचर्य के नाम पर आदर्श की मूढता कुछ ज्यादा है।

जैसे हम सामान्यतः अनुभव करते हैं, यह कहा जा सकता है कि सेक्स एक प्रकार की भुख है; पर कुदरतन यह ऐसी भुख नहीं है कि जिसका भोग नहीं मिलने से हम मर जायेंगे। तथापि, निसर्गतः, सेक्स यह जीवन गति के मूल में है। सो सेक्स इतना आंतरिक, जिंदापन व ताकत के साथ क्यों है इसे महसूस किया जा सकता है। तथा स्त्री - पुरुष समानता भाव से, एक दुसरे की गरिमा को समझते हुए, सेक्स के साथ निश्चित जिम्मेदारी जुड़ी होती है।

आप सेक्स में लिप्त होते है या नहीं, आपको यह मिलता भी है या नहीं, यह एक बात है; पर सेक्स या जो भी भाव-पवनां हो, चैतसिकतः किसी भी परंपरा, विश्वास, मान्यताओं में उलझे बगैर, ध्यान अग्नि में उसी भाव-पवनां का बारिकी से दरसण यह सेक्स व कोई भी भाव-पवनां को सीधे जानना-समझना है, उनके निर्जरित होते, जीवन में गहराते, प्रत्यक्ष जीवन सिख है। गोरखनाथ की कुछ बाट देखे —

गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 259-260

त्रियाजीत ते पुरिषा गता, मिलि भाणंत ते पुरिषा गता ।

बिसासघातगी पुरिषा गता, कायरौ तत ते पुरिषा गता ।

अभष भषंते पुरिषा गता, सबद हीण ते पुरिषा गता ।

उदिक राषंत ते पुरिषा गता, पर त्रिया राचंत ते पुरिषा गता ।

सति सति भाषत गोरष बाला, इतना त्यागि रहो निराला ॥

triyājīta te puriṣā gatā, mili bhānanta te puriṣā gatā,
bisāsaghātagī puriṣā gatā, kāyaraū tata te puriṣā gatā,
abhakha bhakhante puriṣā gatā, sabada hīṇa te puriṣā gatā,
udika rākhanta te puriṣā gatā, para triyā rācanta te puriṣā
gatā,
sati sati bhāṣata gorakha bālā, itanā tyāgi raho nirālā.

Captivated by women — they have gone
Coming together to harm others — they have gone
The treacherous — they have gone
The cowards — they have gone
They eat what they shouldn't — they have gone
They do not keep their word — they have gone
They hold their water — they have gone
They fancy other men's wives — they have gone
True, true says young Gorakh
Give them all up, and live alone. (259 - 260)

In Hindi *udika* (*udaka*) or water, i.e. *pānī*, is sometimes used for semen or sexual fluids.

गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 301

पुस्तक पढे न पंडित होयबा, पवन न सीझंत काया ।

ब्यंद राषै ते जति न जानबा, जब लग परमतत्त नहि पाया ॥

pustaka paḍhe na paṇḍita hoyabā, pavana na sījhanta kāyā,
byanda rākhai te jati na jānabā, jaba laga paramatatta nahi
pāyā.

Reading books won't make you a pandit,
controlling breath won't heat your body,
holding semen won't make you an ascetic,
you won't have it until you find the param tatta. (301)

ग्यात से, विचार प्रक्रिया से, मुक्त हो आसति (अस्ति) सत के प्रति ध्यान (attention) से होय, (भले मन भीतर विचार शृंखला चलती हो या नहीं), और ऐसे बाला (youthful) होना, यह परम तत्त है, जिसे हमारा मन-मगज समझकर जी सकता है। यह शुन्यता है। इसीमें बोधि या ब्रह्म अगनि का अपने से जगना होता है। सो अलख संग्यान, ध्यान, शुन्यता व ब्रह्म अगनि वा बोधि की अंतर्समझ, जो सब एकत्रित है, यह "मूलभूत अंतर्समझ" है, यही इनसाइट की समग्रता है, जिसके साथ चित्त अवधूनन होते अनेकों इनसाइट जागती रहती है। और सिद्ध परम सत या इश्वरीय सत बाबत शायद ही कोई बात करते हैं।

यह कहा जा सकता है कि, पथ की समग्रता में, एक प्रकार से, शून्यता के दो आयाम हैं :

1. शून्यता व चित्त अवधूनन; 2. शून्यता व अवधूत चित्त।

पहली केस में सिद्ध अब तक परम सत के प्रति चेतन नहीं हुआ है, मगर वह यह समझता है कि उस बाबत बोलने की आवश्यकता नहीं है, और उसके लिए रास्ता साफ होता है। दुसरी केस में, वह परम सत के प्रति चेतन या जागृत हो गया है, और देखता है कि उस बाबत बोलना तकरीबन असंभव है या अनावश्यक है।

धरम पथ में आरंभ, घट, परचय माइलस्टोन पार होते परम सत की कुछ अनुभूति साधक भले पाये, पर यह तात्कालिक होती है, कि जो निसपति में, निरवाण में, आरपार होती है।

Attention to "what is" (*asti*), with freedom from the known, from thinking (thoughts may or may not keep chattering on), and thus being youthful, *bālā*, is the ultimate truth (*param tatta*) that the mind can become aware of. This is emptiness. Thus, insight into attention, emptiness and divine fire, which are all one, is the "fundamental insight", the wholeness of insight, with which you keep on emptying and awakening to new insights. Siddhas then hardly ever talk about *tatta* as supreme or God.

It could be said that, there are two aspects of emptiness:

1. Emptiness and the emptying of consciousness;
2. Emptiness and the fully emptied consciousness.

In the first case, a siddha is not yet awakened to the supreme, but nevertheless he sees the falsity of thinking or talking about that and the path is clear to him. In the second, he is awakened to the supreme, and sees that it is hardly possible or necessary to talk about that.



सतयुग, कलियुग SATYAYUGA, KALIYUGA

सतयुग, कलियुग ऐसे किसी युगों की विचार के परे कोई सत्यता नहीं है; दुसरे शब्दों में, यह व्यक्तिगत वा मानसिक समय की एक मूलतः गलत अवधारणा है। कुछ भी युग या तथाकथित काल, समय है, उसमें क्या कैसा व्यवहार करे यह अभी आपके हमारे हाथ में है। सुबह, दोपहर, शाम, वर्षा, गर्मी, महिना, वर्षादि काल की बातें हैं, जो नैसर्गिक, भौतिक समय हैं, और हमारे हाथ में नहीं हैं।

गोरख सबदी Gorakh Sabadi —

हिरदा का भाव हाथ मैं जाणिये, यह कलि आई षोटी ।
बदंत गोरष सुणौं रे अवधू, करवै होई सु निकसै टोटी ॥१२२॥

Know in the hands the feelings of the heart,
this cheating Kali has come.

Gorakh says, dear Avadhu! Listen,
what is in the kettle comes out through the

spout.

पुराण कथाओं में चार युग कहे गए हैं। सबदी में कलि को छोड़कर अन्य किसी भी युग का उल्लेख नहीं है, चाहे #197 में अप्रत्यक्षतः जुग च्यारि यह जुग जुग, अनंत काल, ऐसे संदर्भ में है। ऐसा लगता है गोरख कलि का इस्तेमाल चार युगों में से एक इस अर्थ में नहीं करते हैं, मगर कोई समय इस सामान्य अर्थ में करते हैं।

सुबह, दोपहर, शाम, वर्षा, गर्मी, महिना, वर्षादि काल की बातें हैं, जो नैसर्गिक, भौतिक समय हैं, और हमारे हाथ में नहीं हैं। तथापि, कलि के बारे में यह कहा जाता है कि, यह ठगी, चोरी, झूठ आदि बुरे व्यवहार, आचरण का काल है। तो कुछ भी युग या तथाकथित काल, समय है, उसमें क्या कैसा व्यवहार करे यह आपके हमारे हाथ में है। साफ है कि, सतयुग, कलियुग ऐसे किसी युगों की विचार के परे कोई सत्यता नहीं है; दूसरे शब्दों में, यह व्यक्तिगत वा मानसिक समय की एक मूलतः गलत अवधारणा है। सत जीना है या कलि, सही या गलत, यह अभी आपके हाथ में है।

हम यह देखते हैं कि, गोरखनाथ सामान्य लोगों की बोली भाषा का उपयोग करते हैं, जिसमें अनेकों शब्द-प्रयोग, जैसे "बहतरी, करवै होई सु निकसै टोटी, तीनि त्रिलोक, कलीका भाव, वुटाकर मारी, जम दरबारी, जंम घरि, अठसठि तिरथ, पंडित पढिया, दिसंतर किया, हठ न करिबा, चौरासी" इत्यादि का वह प्रयोग करते हैं।

Mythologically, it is said that there are four ages or *yugas*. The Sabadis do not refer to any other ages except to *Kali*, though in #197 it is indirectly referred to as *juga cyāri* (the four ages, in the sense of the infinite past). It seems that Gorakh does not

use *Kali* in the sense of its being one of the four ages, but in the sense of time in general.

Put round the other way, what kind of time is *Kali*? There is time as morning, evening, winter, summer, month, year and so on. This is natural, physical time, which is not in our hands. However, the age of *Kali* is described as a time of cheating, of some wrong behaviour. Whatever the age or time it may be, how to behave now is in your hands. Ideas of the age of *Satyayuga*, *Kaliyuga* and so on have no reality apart from thought. In other words, it seems a puzzled notion of subjective or psychological time. Whether to live in *Satya* or *Kali*, rightly or wrongly, is in your hands.

We see that Gorakh uses phrases, proverbs, wordings from common usage, such as *bahatari*, *karavai hoī su nikasai tofī*, *tīni triloka*, *kalīkā bhāva*, *vutākara mārī*, *jama darabārī*, *jama ghari*, *aṭhasaṭhi tiratha*, *paṇḍita parhiyā*, *disantara kiyā*, *haṭha na karibā*, *caurāsī* etc.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 119

कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी ।
पढ्या गूण्या सूबा बिलाई षाया, पंडित के हाथि रह गई
पोथी ॥

Talking is easy, living it is tough,
talking without living it is empty.
The tom cat ate the studious parrot,

in the scholar's hand only a book is left. (119)



नौ नाथ चौरासी सिद्ध — एक मनमुखी बात

गोरख संग्यान अर सत धरम चेतना में नौ नाथ व चौरासी सिद्ध इस संकल्पना का कोई महत्व नहीं है। यह एक मनमुखी बात है, जोग वा धरम के नाम पर केवल विचार की पैदाइश है। यह कुछ ऐसा ही है जैसे दस अवतार, आदिनाथ, प्रथम या आखिरी अवतार, रसूल, मसीहा, मैत्रेय आदि परंपरागत बातें, जो धरम प्रवाह में विचार पैदाइश चैतसिक बोझ से ज्यादा नहीं है।

गोरखनाथ व सम्यक सिद्ध यह नौ नाथ व चौरासी सिद्धों की संकल्पना पैदा करने वाले नहीं हैं, ना इसे कोई महत्व देते हैं। ऐसी बातें सिद्धों, बुद्धों की अनंत धारा को मर्यादित रखने की एक चालाकी का हिस्सा भर है, जो कभी कभी आम आदमी के पकड़ में नहीं आती।

अर्थात्, धरम के अनंत प्रवाह में बुद्ध, सुकरात, गोरख, जिद्दू जैसे खोजी, सिद्ध, महासिद्ध, सम्मा संबुद्ध पैदा होते ही रहते हैं, और इनका पैदा होना आम खोजी इन्सानों में से ही संभव है, किसी अवतार, मसीहा, मैत्रेय आदि विचार पैदाइश कचरे पर निर्भर होकर नहीं। साथ ही बुद्ध, गोरख जैसे महासिद्धों की कालजयी बानी को सम्हालना, चेतन चलाना, भी हमारी जिम्मेदारी है।

गोरखनाथ यह नाथ पंथ के पुनर्प्रस्थापक है, सो प्रमुख पुरुष के रूप में है; तथा नाथ सिद्ध धारा में अनेकानेक सिद्ध, महासिद्ध हुए हैं, जागते रहते हैं। तथाकथित नौ नाथ व चौरासी सिद्धों के नाम पर यहां वहां जो लिस्टे बताई जाती है, उसमें अमूमन एकवाक्यता नहीं है, जो साहजिक है। गोरखनाथ साफ कहते हैं —

सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता, अनंत सिधां की बांणीं।

सीस नवावत सत गुर मिलिया, जागत रैणि बिहांणीं॥

— गोरख, सबदी 107.

गुदड़ी जुग च्यारि तै आई, गुदड़ी सिध साधिका चलाई॥

गुदड़ी में अतीत का बासा, भणत गोरखनाथ मछिंद्र का दासा॥

— गोरख, सबदी 197.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 283

निस्प्रेही निरदावे षेले, निरष जोग नियारा ।

पसु पंखेरू पंष सूं बंध्या, निरपष गोरष सारा ॥

Living desirelessly, without trickery.

Look carefully, yoga is distinct.

Animals and birds belong to different groups,

Gorakh belongs to no group. (283)

This is GG#237.

पशु, पक्षियों की प्रजातियां शारिरिक सुरक्षा के मुद्देनजर समुह में रहती है, पर वह चैतसिकतः विभाजित नहीं होते। तथापि, मनुष्य प्राणी अपने आप को चैतसिकतः पार्टी, धरमनाम परंपरा, वर्ण, जाति, वर्ग आदि में विभाजित करते चलते हैं, जिनसे कोई भी गोरख सूझ बूझ के साथ मुक्त चलता है। दुसरे शब्दों में, समझ यह स्त्री वा पुरुष नहीं होती; और साधू अर सज्जन की कोई वर्ण (वर्णाश्रम), जात, धरमनाम परंपरा नहीं हो सकती।

Species of animals and birds form groups for their physical survival, but psychologically they are not divided. Human beings, however, divide themselves psychologically into groups in the name of religion, society, caste, class etc., from which a Gorakh goes free.



ग्रह फलित मनमुखी

Astronomy, ग्रह गणित, यह सायन्स है।

Astrology, ग्रह फलित, यह सायन्स नहीं है।

ग्रह फलित ऐसी बात होती है जैसे दिवार पर टंगी बिगड़ी बंद घड़ी, जो दिन में दो बार सही समय बता देती है, और बाकी सारे समय वह गलत होती है। सो Astrology चलाने वाले चैतसिक ठगी में होते हैं, एक प्रकार से धरमनाम धंधे में रहते हुए अपने अग्यान अंधेरे में दुसरो को लपेटने की बातें चलाते हैं।

दुनियाभर के सभी जीवित, मृत, आनेवाले जीवों की कुंडली बनाकर फलित या भविष्य बताने की तिकड़म चलनेवाले कभी यह नहीं बता सकते कि, अगले मिनट में किसी के मन में क्या विचार या भाव-पवनां उठेंगे और वह क्या प्रतिसाद करेगा। मतलब समझते हो? हमारे सारे नाम रूप जीवन गति में, कार्यकारण के होते, अनिश्चितता व अनित्यता यह मूलभूत सत है; और जीवन को रिस्पांड करना, विचार हीनता से या विचारशील हो, अहं को लेकर या अहं से मुक्तता के साथ, काल भव में वा ध्यान-ग्यान सूं, आपके हाथ में है, आपकी जिम्मेदारी है। समझदार astrology को सीधे साइड कर देते है, ऐसे तिकड़मी पंडितों में नहीं उलझते।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi – 300

ग्यान सौ ग्यान मुरिष सौं मवन, बादी बाद न छीजै पवन ।
जहां जैसा तहां तैसा, नाथ कहै पूता जोग ऐसा ॥

Share wisdom with the wise,
avoid talking with the stupid,
no talking with a disputant,
no loss of energy.
Where there is a need, be there.
Nath says, son, yoga is like this. (300)

This is GG#298.

गोरखनाथ जोग (योग) यह शब्द धरम इस अर्थ में प्रयोग करते हैं, विशेषकर धरम की ऊर्ध्वगामिता; और जैसे हमने देखा है, जोग की अलख विग्यान ऐसे व्याख्या करते हैं। सो धम्म इस शब्द का प्रयोग बुद्ध करते हैं, जो सतत गतिमान है, सनातन है, निसर्ग के अपने आप से चलने वाले सार्वभौम, सार्वजनीन नियम है। सनंतनो या सनातन व भगवान यह शब्द बुद्ध द्वारा गढे व बार बार इस्तेमाल किए गए हैं, और वेदों में ये शायद ही पाये जाते हैं। ऋग्वेद (10.60.12) में भगवान यह शब्द एक बार भाग्यवान इस अर्थ से आता है, व जैसे बताते हैं आखिरी अथर्ववेद में सनातन यह शब्द एक बार आता है, बाकी ये वैदिक साहित्य में नहीं पाये जाते। तथापि, वैदिक परंपरा इन्हें अपनाकर अपने मतलब से

इस्तेमाल किए जा रही हैं, जैसे कि वह सनातन हो। वैदिक परंपरा यह प्रमुखता से तृष्णा गामिता के साथ तांत्रिक-मांत्रिक है, लोक-परलोक आस कालांध है, सनातन नहीं। भगवान इस शब्द का देवता या इश्वर (gods or God) से कोई मतलब नहीं है, क्योंकि यह भग्ग + वान, तृष्णा का जलना, ऐसे है, और ऐसे मनुष्य को निर्देशित करता है। सो जो भी भगवान है, वह अवधूत है, अरहत है।

“अलख निरंजन अवधू!” यह नाथ/सिद्ध पंथ का मूल उद्धोष है; नाथ, निरंजन, धुत (अवधू), योग आदि शब्द बुद्ध स्कूल में सम्यक रूप से व्याख्यायित मिलते हैं, और उन्हीं अर्थों में ये नाथ स्कूल में प्रचलित हैं। अलख, निरंजन, अवधू यह शब्द वेदों में नहीं मिलते; नाथ यह शब्द वेदों में है, पर सिद्ध-बुद्ध संग्यान जैसे अपने आप में चैतसिकतः नाथ होकर चित्त अवधूतन के अर्थ में नहीं है। वस्तुतः, वेदों में ग्यात की जगह व मर्यादा समझकर, ग्यात से मुक्तता के साथ, यथाभूत सत दरसण, शुन्यता व चित्त अवधूतन की बात नहीं है।

न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीधा कुदचनं।

अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनंतनो॥

यहां द्वेष से द्वेष का समापन कभी भी नहीं होता।

द्वेष रहितता से ही द्वेष का समापन होता है।

यह सनातन धम्म है।

— बुद्ध, धम्मपद 5

भग्ग रागो भग्ग दोसो भग्ग मोहो अनासवो।
भग्गस्स पापका धम्मा भगवा तेन उच्चति।।

राग जला, द्वेष जला, मोह जला, विकारों से मुक्त भया,
पाप धम्म समाप्त भये — कहते हैं उसे भगवान।

— बुद्ध।

Gorakhnath uses the word "*joga*" (yoga) in the sense of religion or *dharma*, and as we have seen, *joga* is described as *alakh vīgyān*. Buddha uses *dhamma* in the same way, and describes it as *sanantano* or *sanātana*, that is, ever going, laws of nature by itself at all levels, eternal. Furthermore, it is interesting to see that *sanantano* or *sanātana* and *bhagavān* are key words that have been regularly used by the Buddha and are scarcely found in the *Vedas*, as the word *bhagavān* occurs once in the *R̥gveda* (10.60.12) in the sense of "benefiting", and the word *sanātana* is said to occur once in the *Atharvaveda* (*bhāṣya*) which is the last *Veda*. However, traditionalists have adopted these words, and use them to propagate their tradition as being *sanātan*, when it is mainly *tantra-mantra* and desire-oriented for this and other worlds (*loka-paraloka āsa*). Likewise, the word *bhagavān* is nothing to do with ideas of gods or God, as *bhagavān* is derived from *bhagga* + *vān*, that is, the burning of desire, and refers to such a human being. Whoever is a *bhagavān*, he or she is an *avadhūt*, an *arahat*.

Alakh nirañjan avadhū is the key declaration of the Nath school; the words Nath, *nirañjan*, *dhut* (*avadhū*), yoga are defined in the school of the Buddha, and are used in the same

sense in the Nath school. *Alakh, nirañjan, avadhū* are not found in the *Vedas*; Nath is found in the *Vedas* but not in the siddha or buddha sense of being a master of oneself and the emptying of the self. The *Vedas* do not speak of freedom from the known of ideas and ideologies, nor of observation of what is, emptiness and emptying of the consciousness.

na hi verena verāni, sammantīdhā kudacanam
averena ca sammanti, esa dhammo sanantano

Hatred is never appeased by hatred in this world.
By non-hatred alone is hatred appeased.
This is a law eternal.

— Buddha, Dhammapada 5.

bhagga rāgo bhagga doso bhagga moho anāsavo
bhaggassa pāpa kā dhammā, bhagavā tena uccati

Attraction is burned, aversion is burned,
delusion is burned,
burned are the dhammas of sinfulness —
he is called a bhagavā (bhagavān). — Buddha.



नाथ की नादी-पवित्री

नादी-पवित्री यह नाथ योगी (संन्यासी), तथा गृहस्थ नाथ योगी, भेड़ के काले उन से विशिष्ट प्रकार से बुने गये धागे में, या साधारण काले धागे में, गले में पहनते हैं। यह नियमसे भेड़ के काले उन से बने धागे में पवित्री (गोल रिंग), रुद्राक्ष, व नादी, यह सब एक साथ जुड़े एक पहचान होती है बस। भेड़ के काले उन का धागा उपलब्ध ना हो तो आप बाजार में सहज उपलब्ध सिंथेटिक काला उन का या कोई भी काला धागा इस्तेमाल कर सकते हैं, और ऐसे में गृहस्थ या अवघड/संन्यासी दीक्षा भी दीयी जा सकती है।

काले उन का धागा : यह शरीर व मन या घट-पिंड के नाड़ी तंत्र का, mechanism का, प्रतीक है; जो मूलतः वेदना, भावना, विचार गति है, पल पल बदलती रहती है, अनित्य व अनिश्चितता के साथ होती है, और यह पल पल जानी या जीयी जा सकती है।

पवित्री : अलख संग्यान सूं बाला चेतना का, meditating awareness वा शुन्यता का, प्रतीक है।

रुद्राक्ष (रुद्र = fearsome, stormy + अक्ष = eye) : यह भय, क्रोध, अनुरागदि भाव-पवनां चित्त प्रवाहके दरसण का प्रतीक माना जा सकता है। तिन-चार सौ साल पहले के नाथ साधू एवं नादी-पवित्री के चित्र world galleries में देखने से यह ग्यात होता है कि, तब रुद्राक्ष यह नाथ जनेऊ का हिस्सा नहीं था। सिर्फ उन का धागा, पवित्री व नादी होते थे।

आज भी इसे, जो एक स्कूल पहचान चिन्ह है, अमूमन "नादी-पवित्री" ही कहते हैं।

नादी : नाद, तरंग, वेदना का प्रतीक है, कि जो संपूर्ण नाम-रूप जगत की, शरीर और मन की, मूल गति है। और यही वेदना-भावनां गति "अस्ति" सत्यता है, कि जो हमारी वास्तविक, तात्त्विक अस्तित्व हैं।

सारांश में, नादी-पवित्री का प्रतीक स्वरूप अर्थ स्पष्टतः यह है कि, शरीर-मानस तंत्र, हमारी चेतना, यह अलख संग्यान के साथ यथाभूत सत दर्शन से जीये। मतलब, हम शुन्यता से नाद तरंग वा वेदना भावनां की अस्तित्व से जीये, कि जिसमें बोधि वा ब्रह्म अगनि का अपने से उदय हो चित्तावधूतन चले, चैतसिकतः मीठा मरण चले।

इसमें केवल अलंकार स्वरूप कोई मनी (gems) रुद्राक्ष के उपर निचे जोडे जा सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि, इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवतादि मनमुखी बातों का, कल्पनाओं का, कोई स्थान नहीं है। अलख संग्यान निरालंब हैं!



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 296

प्रथम अति छाडिबा अवधू, केस वेस अरु देस ।

माया ममता मौह फुनि तजिबा, सत गुरु कै उपदेस ॥

Avadhu, first give up indulgence in
hair, dress and territory.
Give up the delusion of me and mine,
these are the sadguru's teachings. (296)

This is GG#289.

अतिरेकवत्थतण्हं पहाय सन्निधिविवज्जितो धीरो,
संतोससुखरसञ्जू तिच्चीवरधरो भवति योगी ।

atirekavatthataṇhaṃ pahāya sannidhivivajjito dhīro,
santosasukharasaññū ticīvaradharo bhavati yogī.

अतिरिक्त वस्त्रों की तृष्णा त्याग कर,
जो धीरवान मानुस संचय टाल देता है,
तीन चीवरों को धारण करने वाला वह,
संतोष सुख रस जानता योगी होता है।

Having abandoned craving for extra cloth,
the wise man who avoids accumulation,
a user of just three robes,

is a yogi who knows the pleasant flavour of contentment.

— *Visuddhimagga* “The Path of Purification”, chapter II, section 26; translated into English by Ven. Bhikkhu Bodhi.



योगी वा साधू की धूनी

धूनी यह एक अगनि-स्थान होता है, जिसमें अगनि अमूमन जलती रहती है। आप भले इसमें अगनि जलती हुई ना देखे, पर राख के नीचे यह मंद गति से जलती रहती है; या ऐसा भी हो कि यह नियमितता के बजाय कभी-कभी चेतन कियी जाती हो।

अगनि यह मनुष्यों द्वारा नियमित रूप से उपयोग कियी जाती है, और बाकी जीवों द्वारा ऐसे चेतन व नियमित रूप से इस्तेमाल नहीं कियी जाती। आगे यह भी जाने कि, संभवतः अगनि यह पहली बात है जिसका अनेक कारणों से मानुष्य ने इतिहास की शुरुआत में ही सबसे पहला इस्तेमाल शुरू किया। इसे समझते हुए धूनी को ऐसे मौलिक रूप में सादगी से लिया जाय।

साधू धूनी का उपयोग इसके साथ बैठना, सहज ध्यान करते रहना, सतसंग करना, आराम करना या सोने के लिए करते हैं; व कभी भोजन पकाने के लिए भी करते हैं। कहना चाहिए कि यह अमूमन ऐसा ही है जैसे किसी घरों में, समुद्र किनारे या पर्यटन स्थानों पर हम अगनि-स्थान देखते हैं।

नाथ साधू की धूनी गोलाकार होती है, एक प्रकार से शुन्यता की सांकेतिकता से, व यह सभी जनों का समता बंधुता के साथ स्वागत करती है; तथा यह मंत्र-तंत्र, होम-हवनादि के लिए उपयोग में नहीं लीयी जाती। सुबह-श्याम या श्याम को गुग्गुलु जैसा नैसर्गिक धूप इसमें रखते हैं, थोड़ा सा घी या दुध का भोग कभी कभार दिया जाता है, या नहीं, कभी आरती या प्रार्थना करते हैं, या नहीं भी। सबसे महत्वपूर्ण है कि, आंतरिक धूनी जलती रहे, मतलब, ध्यान!

धूनी बाबत मत-मतांतर, मान्यताएं, कर्मकांड आदि लेकर चलना यह विचार की पैदा कियी व चलाई बातें होती हैं, धरम के नाम पर काल-कचरा होता है।

धूनी के आसपास सफाई महत्वपूर्ण है; और शील, संवेग, ध्यान से यहां पवित्रता गहराती है।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 265

मन बांधूंगा पवन स्यूं, पवन बांधूंगा मन स्यूं ।
मन पवना की गांठी छोंगी, तब बोलैगा कोवत स्यूं ॥
मन तेरा की माई मूंडू, पवना दउं र बहाई ।
मन पवना का गम नहीं, तहाँ रहै ल्यौ लाई ॥

I will bind my mind with breathing,
I will bind the breathing with my mind,
I will tie my mind and my breath,
then it will speak with power.
Mind, I will shave your mother's head,
and let the breath flow.
No sadness for mind and breath,
there we stay in the flame of meditation. (265)

इस सबदी का प्रथम भाग नैसर्गिक सांस के बारिकी से दरसन से (आनापान), वा ध्यान-समाधि से, समाधि बल की बात करता हैं; व दुसरा भाग मन प्रवाह का जैसा हैं वैसे दरसन व चित्त अवधूनन की, ध्यान-बोधि की, बात करता हैं।

The first part of this sabadi speaks of observation of breathing (*ānāpān*) and *samadhi bala* (the power of *Samadhi*), while the

second speaks of observation of the stream of the mind as it is, of *dhyān-bodhi*, and of emptying.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 63

मन मैं रहिणां भेद न कहिणां, बोलिबा अमृत बाणीं ।

आगिला अगनि होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पाणीं ॥

Remain in the mind, don't speak of difference,
tell the immortal words.

If someone becomes fiery, Avadhu,
you become water. (63)



समाधि, स्तूप

किसी तपे हुए अग्र (advanced) साधक या निरवाणिक सिद्ध के मरणोपरांत शरीर धातु पर समाधि या स्तूप बनाने की बात गोरख, बुद्ध जैसे महासिद्ध बताते हैं। इसका जस्टिफिकेशन इतना भर है कि, चंदन के परिपक्व पेड़ में इसके सूखने, मरने के बाद भी खुशबु तरंग होते हैं, जो इसके मरणोपरांत काल-गति में सहज बिखरते रहते हैं। सो चंदन की सूखी लकड़ी ऐसे ही गंवाने की बात नहीं है।

समाधि या स्तूप में मृत शरीर धातु यह मिट्टी वा रेत में समाई जाती है, ताकि नैसर्गिक रूप से वह हड्डी आदि शरीर धातु सुरक्षित रहे। यहां एक बात समझे कि, ऐसे मृत शरीर धातु को, किसी चालबाज प्रोपागंडा के प्रभाव में आकर, नमक या शक्कर में समाधि देना, जमीन में समाना, यह उस शरीर धातु रूप चंदन की लकड़ी को जल्द बर्बाद करना है, जो समझ की बात नहीं है।

साधू-सज्जन की मरणोपरांत समाधि पर पादुका-चिन्ह वा तथाकथित शिवलिंग का रखा जाना सम्यक नहीं है। किसी के पाँव या पद-चिन्ह किसी जिंदा या मरे हुए आदमी के सर पर रखने की कोई भी शोभा नहीं है। किन धर्मांधों को अपने पाँव पुजवाना अच्छा लगता है? कौन धर्मांध तत्व ऐसी बेहूदा, विकृत बातें धरम के नाम पर यहाँ वहाँ घुसा देते है? और इसे कोई साधू वा सज्जन चलाते है तो यह मूढता है, धरमनाम अंधापन है। तथा जननेंद्रिय पुरुष, स्त्री वा किसी देवता के हो, प्रायवसी

की बात है; दोनों का संभोग और भी प्रायवसी है। इसके तथाकथित शिवलिंग के रूप में या किसी तरह से प्रदर्शन, पूजन वा किसी समाधि पर रखे जाने की शोभा नहीं, कोई जस्टिफिकेशन नहीं। ऐसी बातों में ध्यान-ग्यान व धरम के नाम पर अहंगंड व उलझन के सिवा कुछ नहीं है। हम धरम के नाम पर क्या करते हैं इसे देखे, समझे, व गलत को साइड कर दे यह जरूरी है। कुदरत को भ्रमित होना मंजूर नहीं। अंधेरे में भी कांटे पर पांव पडने से कांटा चुभता है। और चेतना मे किसी प्रोपागंडा से धंसे झूठ के कांटे बड़ा दुख।

समाधि पर पहचान के तौर अमूमन समाधि शीला के रूप में समाधि कमल, साधारण गोल वा चौरस आदि पत्थर अपने सहज रूप में रखा जाता है।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 291

मरौ वे जोगी मरणा है मीठा, तिस मरणी मरौ जिस गोरष दीठा ।

जीवता मरिवा मरिकरि जीयवा, अमी महारस भरि भरि पीयवा ॥

Truly die, Yogi, dying is sweet!
Die the death Gorakh died –
beholding.

Die while living, live having died,
the wonderful ambrosia –
drink your fill of it. (291)

This is GG#274.

स्पष्ट है कि, मानव का सारा चेतन, अवचेतन (अचेतन) पिंड यह संबंध की गति में आपस में जुड़ा वेदनां भावनां वा भाव पवनां प्रवाह है, नाद बिंद तरंग अर विचार तृष्णा गति है। तथा तृष्णा या आस के साथ पिंड की काल भव गति चलती है; और सम्यक ध्यान सूं इस पिंड गति में शुन्यता का, मतलब ब्रह्म अग्नि वा बोधि का, कल्पनातीत से अपने आप से जगना होकर पिंड का जलना होता है, चैतसिकतः हमारा मरणा होता है, जो मीठा है। मीठे मरण मरते जीना यह जीवन की सर्वश्रेष्ठ कला है!

The totality of a human being, implying both conscious and subconscious (unconscious) things, is the interconnected movement of sensations and feelings, sounds and vibrations, thoughts and desires; that with desire, our consciousness moves in time and becoming, and that right meditation is the awakening of emptiness, that is, divine fire or *bodhi* on its own from nowhere, and the emptying of the consciousness. The emptying of the consciousness is our dying, psychologically, which is sweet. To die while living and live having died is the supreme art of living!



राजा सुहेलदेव भर थारू — भरथरी नाथ

भरथरी का विकास भर थारू से ही हुआ है, वही भरथरी जो नाथ पंथी थे और गोरखनाथ के शिष्य थे। ये परवर्ती बौद्धों की परंपरा थी। वृजभार (वृज भर) और भरथरी (भर थरी) दोनों जुबानी स्मृतियों के नायक हैं। दोनों गोरखनाथ के शिष्य हैं। दोनों नाथपंथी योगी बनते हैं। दोनों भर समुदाय के हैं। (वृजभार में घूँघट काढ़े "भर" छिपा है, जैसे लखनऊ में "ऊर" छिपा है।)

राजा सुहेलदेव और सालार मसूद की प्रारंभिक जानकारी अमीर खुसरो की पुस्तक "एजाज-ए-खुसरवी" (14 वीं सदी) और अब्द-उर-रहमान की पुस्तक "मिरात-ए-मसूदी" (17 वीं सदी) से मिलती है। राजा सुहेलदेव के समुदाय के बारे में जो प्राचीन और प्रामाणिक जानकारी मिलती है, उसके अनुसार वे भर थारू थे, यह प्रमाण "मिरात-ए-मसूदी" से मिलता है।

भर थारू मूल रूप से भरों की शाखा है और ये भर लोग पहले से ही बौद्ध थे, जैसा कि हम लोग भरहुत में "भर" का योग देखते हैं। थारू भी स्थविर का संक्षिप्त रूप है, जो बौद्धों से जुड़ा है। राजा सुहेलदेव 11 वीं सदी में श्रावस्ती के राजा थे, तब श्रावस्ती बौद्ध केंद्र था। 12 वीं सदी में श्रावस्ती बौद्ध भिक्षुओं से भरा था, इसका प्रमाण गहड़वाल नरेश गोविंदचंद्र के श्रावस्ती ताम्रपत्र से मिलता है। संवत् 1186 में श्रावस्ती स्थित जेतवन के भिक्षु संघ को राजा गोविंदचंद्र ने 6 गाँवों की आय दान में दिए थे। श्रावस्ती 12 वीं सदी में भी बौद्ध भिक्षुओं से गुलजार था और राजा सुहेलदेव (भर थारू) इसी श्रावस्ती के 11 वीं सदी के राजा थे। सुहेलदेव भर थारू बौद्ध राजा थे।

(राजा सुहेलदेव की बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने गजनवी कमांडर सालार मसूद को मौत की घाट उतार दिए थे तथा फौज को नेस्तनाबूद कर दिए थे।)

— Rajendra Prasad Singh,
(इनकी Facebook वाल से साभार, a bit edited).



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 189

ग्यान सरीखा गुरु न मिलिया, चित्त सरीखा चेला ।
मन सरीखा मेलू न मिलिया, तीथैं गोरख फिरै अकेला ॥

No guru found like wisdom,
no disciple like consciousness,
no friend like the mind –
so Gorakh roams alone. (189)

अंतर्समझ या बोधि के आलोक के परे कोई ग्यान नहीं, कोई गुरु नहीं,
जिसमें हमारा चित्त दरसन एवं सिखने के लिए खुला होता है; और ऐसे
सम्यक्ता से विचारशील व स्वतंत्र होता है।

The guru is the light of insight, in which our consciousness is open to observation and learning, and thereby becomes thoughtful and independent.



ऋग्वेद की दुनिया

ऋग्वेद को दुनिया की सबसे प्राचीन पुस्तक बताया गया है, लेकिन भारत के बाहर किसी भी भाषा के प्राचीन साहित्य में इसका कोई जिक्र नहीं मिलता है। ग्रीक साहित्य, पारसी साहित्य या पहलवी साहित्य ऋग्वेद को नहीं जानता। मिश्र, बेबिलोन आदि के प्राचीन अभिलेख भी इसे नहीं जानते। भारत के बाहर के किसी भी प्राचीन भाषा का साहित्य इससे वाकिफ नहीं है। अभिलेख भी वाकिफ नहीं है। फिर भी ऋग्वेद को दुनिया की सबसे प्राचीन पुस्तक बताने पर विद्वान तुले हैं, जबकि भारत को छोड़कर दुनिया भर के साहित्य और अभिलेख इसे जानते तक नहीं हैं।

लेकिन बुद्ध का जिक्र देश के बाहर के प्राचीन साहित्य में भी मिलते हैं।

*

ऐसे ही अंड-बंड जो भी आता है, लोग बोल देता है... संस्कृत का लिखित सबूत माँगिए तो बोल दिया कि कुछ लिखाता नहीं था, सब मुँह जुबानी थी, पूछिए घर तो घर सब माटी का था, पानी में बह गया...

— Rajendra Prasad Singh.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 87

सुणौं हो देवल तजौ जंजालं, अमिय पीवत तब होइबा बालं ।

ब्रह्म अगनि सीचत मूलं, फूल्या फूल कलि फिरि फूलं ॥

Listen priest! Give up those entanglements,
drink the nectar, and become a child;
water the root with the fire of attention,
the flower in blossom will become a bud once more. (87)

मेय का अर्थ है गणना, सो अमेय या अमिय का अर्थ है गणना के परे;
और अमिय का अमृत यह भी अर्थ है। विचार, भले मान्यता, पूजा,
प्रार्थना आदि हो, काल है, मेय है। और अलख संग्यान सूं सांस वा
भावना-वेदनां दरसन, यथाभूत सत के प्रति ध्यान, यह मूल के साथ
होना है, जो गणना नहीं है। ध्यान की अगनि अजानता है, अग्यान नहीं,
और ऐसे आप अमिय के प्रति खुले होते हैं। अमिय क्या है? अमिय बोधि
है, ब्रह्म अगनि है।

Meya means “measure”, and thus *ameya* or *amiya* is “no measure, immeasurable”, and it also means “nectar”. Thought or thinking, be they beliefs, ideologies, worship or prayers, are locked in time, they are measured, whereas attention to “what is”, towards breathing or feelings and sensations, is to get to the root, which is no measure, the immeasurable, *bodhi*. Thus we understand what nectar or ambrosia is, it is *bodhi*, divine fire.



वर्णाश्रम उच्च-नीचता व मनुवाद

जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते ।

जन्मना जायते शुद्रः संस्कारात् भवेत् द्विजः ॥

जन्म से सभी शूद्र होते हैं, कर्म से द्विज कहे जाते हैं ।

जन्म से सभी शूद्र होते हैं, संस्कारों से द्विज होते हैं ॥

— मनुस्मृति ।

क्या जन्म से बालक शुद्र होता है? यह तो धर्माधता के साथ नीचता की हद है। जन्म से बालक निसर्गतः ग्यात से मुक्त होता है, अजानता से होता है, चेतन-अचेतनतः साफ पाक जेहन से होता है। अजानता एक बात है, और किसी तरह से ग्यानी या अग्यानी होना अलग बात है।

बच्चा तो अजानता से होता ही है, हम उम्र से बड़े होते हुए सूझ के साथ ग्यात की जगह व मर्यादा को समझकर चैतसिकता में ग्यात से मुक्त हो अजानता से रहे साफ पाक जेहन है, जीवन की यथाभूत मौलिक सिख के लिए खुला होना है। वर्ना एक कानी आंख वैदिक, कुरानिक, बिब्लिकल, शैव, वैष्णव आदि में अटकी हो, तो सत से दूर हो अहंगंड में होना लाजमी है। और किसी भी तरह के चैतसिक अहं में काल भव संभव है, मोक्ष-मुक्ति आदि के नाम भक्त्यांध हो धरम का बाजार संभव है, मुक्ति या निरवाण संभव नहीं।

आदमी की शिक्षा (कुछ प्राथमिक छोड़कर), व्यवसाय, धरमनाम परंपरा आदि निर्देशित या निश्चित करने का अधिकार, जन्म वा जाति धर्म आदि के नाम पर, किसी दूसरे आदमी, कोई बॉडी या agency के पास होना सामाजिक फ्रॉड (fraud) है। अपने स्वभाव में देख समझकर बदल करने की बात हर आदमी की अंदरूनी स्वतंत्रता है।

किसी के मन में कब क्या विचार या भाव-पवनां — डर, करुणा, क्रोध, व्याभिचार, धीरज, सूझ-बूझ आदि — उभरेंगे यह निसर्गतः अनिश्चित है; इसके साथ जैसे भी होनेवाली कुशल-अकुशल प्रतिक्रिया किसी भी आदमी के अपने हाथ में होने के साथ अनिश्चितता से है। तथा शिक्षा ताउम्र की बात है, सत न्यास या सन्यास ताउम्र की बात है, जिम्मेदारी ताउम्र की बात है। सो मनुष्य को किसी वर्ण का वा उच्च-नीच बताया जाना, अमूक आश्रम में है कहना या बांधना यह निसर्ग धरम के विपरित है, मनमुखी है।

साधू अर सज्जन की जात, वर्ण, धरमनाम परंपरा नहीं होती। वर्णाश्रम सामाजिकता यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में सम्यक नहीं है, किसान-कामगार आदि को अशिक्षित व कमजोर रख चूसते रहने वाली पिशाच धर्मिता है, दुनिया की सबसे गंदी सामाजिकता है।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 202

माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरंजन निराकार ।
गुरु हमारै अतीत बोलिये, जिनि किया पिंड का उधारं ॥

Call our desire Mother,
call the pure and formless Father.
Call our guru timelessness
who liberates the body. (202)

Atīta philosophically means that which is beyond the known,
beyond the *gunas*, surpassing, free.



मूढता

बंदर बैल हाथी देवता बनाते,
धरम के नाम परंपरा कैसे चलाते ।
जीव जगत दया-करुणा धरम संग्यान है,
गाय वा सुअर के नाम मन मैल और बात है ॥

धरम की समझ जब बोर्या होय,
तो हाथी-देवता की मोरया होय ।
हाथी-देवता रूप में जनेऊ पूजन होय,
जाने अंजाने उच्च-नीच समाज मन होय ॥

मनुष्य-पशु देवता ले पिशाच चेतना जगे,
मनुष्य चेतना अवचेतन में अधो हो चले ।
तृष्णा संग अधो उधो जो कोई बात जगे,
ध्यान-ग्यान दीप छुटे मन मैला होत चले ॥

काली दशम महाकाल यै सब काल,
देखै, भव दुख अग्यान गति काल ।
धन ग्यान के नाम पूजे लक्ष्मी सरस्वति,
सो धन ग्यान का अवमान होय मरी मति ॥

राम कृष्ण नाम गढ़े बहुजन पात्र बा,
उनके मुंह में वर्णाश्रम उच्च-नीचता बा ।

हरी हर शनी शंकर अल्ला पारबति,
विचार उपज धरम काल दुख गति ॥

धरमनाम अहं आस - कथा मान्यता बहुतै,
धरमनाम भक्ति चमत्कार - अंधता बहुतै ।
धरमनाम धंधा रंजन - बहु दिखावे करै,
धरमनाम बहम होत - वृथा तोष मरै ॥

भ्रमित होना कुदरत को मंजूर नहीं बा,
अंधेरे में कांटे पर पांव कांटा चुभत बा ।
मन भीतर भावना-वेदनां सूं जीवन जाने,
अलख संग्यान सूं बाला बोधि धरम जाने ॥

बोर्या = distorted, corrupted, wrongly going...

हाथी-देवता (गणपति) यह ब्राह्मणवाद की एक प्रकार से ब्राह्मण पूजने, पूजवाने की बात है ऐसे कहा जा सकता है। स्पष्ट है कि, गण+पति, गण+नायक, विनायक, गणेश, मंगलमूर्ती यह सब गण/जन नेता/नायकों के, सिद्ध-बुद्धादि महामानवों के नामाभिधान है, विशेषण है। गणपति = गण पति, जन नेता; गृहपति = घर में प्रमुख, आफिस में अधिकारी; गणेश = गण प्रिय, जन इश वा प्रिय; मंगेश = मंगल स्वरूपा प्रिय, (इश = प्रिय) and so on. तो यह हाथी-देवता, मनमुखी कुरूपता, कब गणपति, गणेश, मंगल हो गया?

गणराज्य, गणव्यवस्था आदि यह बुद्ध-सिद्ध संग्यानी बातें हैं; पंडित कचरदास elements तो शब्द हाइजैक कर उनपर अपना ठप्पा लगाकर चलाने में चालाक, और भगत बने वह अंधे, घने बिगूता। ये elements तो गणतंत्र विरोधी है, प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से राजतंत्र समर्थक है। सो ब्राह्मणवादी व्यवस्था के धार्मिक वा राजनीतिक प्रभाव में, भले हिंदूत्व के नाम पर या जैसे भी, जन जन से धन व ग्यान के स्रोत खिंच कर उन्हें धन ग्यान के नाम पूजे लक्ष्मी सरस्वति जैसी बातों में उलझाने के साथ अशिक्षित व कमजोर रख चूसते रहने की अनेक चालाकियां हैं।

अलख संग्यान = ग्यात (the known) की जगह व मर्यादा समझकर ग्यात से मुक्तता, (भले मन भीतर विचार शृंखला चलती हो या नहीं), व यथाभूत सत दरसण, भाव-पवनां दरसण, यह चैतसिक शुन्यता है। सो ध्यान ग्यान सूं जीवन की साफ व बारिक समझ यह सिद्धों-बुद्धों की धरम के सार्वजनीनता की नेक बात है।

मंगलं मंगलं, भवतु सब्ब मंगलं!



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 269

नाथ कहै मेरा दून्यौ पंथ पूरा, जत नहीं तौ सत का नीसूरा ।
जत सत किरिया रहणि हमारी, और बलि बाकलि देवि
तुम्हारी ॥

Nath says, my twofold path is complete.

If no meditation, there can be no virtue.

We live by meditation and virtue.

Goddess, animal sacrifice and grain are yours. (269)

गोरख कर्मकांडी नहीं है, तांत्रिक मांत्रिक नहीं है। गोरख को किसी भी तरह से तांत्रिक मांत्रिक कहना ऐसा ही झूठ जैसे बुद्ध को अवतार या महात्मा कहना। ऐसी बातों की कितनी ही कतवारी (fabricating), महती (glorifying), वकालत (justifying) करे, वह सब झूठ होता है।

Gorakh is not a ritualist, nor a *tantrik-mantrik*. Calling Gorakh a *tantrik* is as false as calling the Buddha an *avatar*.



दत्त का कुछ भी बाकी नहीं

दत्त यह अवधूत के रूप में दशनामी पंथ के प्रमुख पुरुष है। मगर हिंदूनाम ब्राह्मणवादी मान्यताओं के प्रभाव में अब उनको दशनामी में एक अवधूत के बजाय दत्तात्रेय, त्रिमूर्ति, के मँनेज किये रूप में प्रातिनीधिक तौर पर स्थापित किया जाता है। और यह स्थापना भी शायद अब फार्मल तौर पर होती हो। क्योंकि वेदांत शंकराचार्य का महत्व दशनामी में जानबूझकर स्थापित किया गया है; और अवधूत के मीठे मरण के बजाय अब वहां अहं ब्रह्म की अहंतोषी बातें चलती है। और वेदांत शंकरा यह अहं आत्मा ब्रह्म का हवाई भाव लिए, आम जनों के लिए "भज गोविंदम् मूढमते" कहते, अपनी मुढता खुद ही बता गए है। दुसरे शब्दों में, दत्त वास्तविक रूप में कभी अवधूत रहे या नहीं इस पर भी शक किया जा सकता है, जो प्राथमिकतः गलत नहीं होगा। क्योंकि अलख संग्यान, मतलब ग्यात की जगह व मर्यादा समझकर ग्यात से मुक्तता की जरूरत, अर चित्त अवधूनन की देषना यह दत्त के नाम पर, जिन्हें तथाकथित रूप से अवधूत कहा जाता है, जो भी बातें है उसमें है ही नहीं।

दत्त अवधूत की जनमानस में शायद सबसे दुर्देवी प्रतिमा बनकर रह गयी है। दत्त अवधूत का कुछ भी बाकी नहीं रहा - ना मानुस रूप, ना उनके बोला अवधूत गीता भी वेद-वेदांतिक मान्यताओं के अनुरूप दत्त के नाम पर साफ बाद में लिखी गई है, जैसे गोरक्षनाथ के नाम पर आत्मा परमात्मा, अहं ब्रह्मास्मि आदि मान्यताओं को समावेशित करते हुए झूठमूठ की किताब सिद्ध सिद्धांत पद्धति अभी अठारहवीं सदी में लिखी

गयी है। दत्त को अपने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि मान्यताओं के लिए मँनेज करते हुए अमानवीय दत्तात्रेय/त्रय के रूप में त्रिशूलादि हथियार, ब्राह्मणिक धोती, जनेऊ आदि के साथ दिखाया जाता है। विडंबना है।

आगे और यह कि, ऐसे मँनेजड और finished with दत्त को दत्तात्रेय के रूप में बाकि नाथ सिद्ध, संतों का गुरु दिखाकर उन्हें मँनेज करने की चालाकी चलायी जाती है; साथ ही दत्त जैसे विकृत रूप व बाना में, त्रिशूल हथियार आदि के साथ नाथ सिद्धों को चित्रित करने की कुटिलता भी है। काँमन सेंस की बात है कि, अस्तित्व प्रवाह में कोई आदि वा अंतिम योगी, गुरु, नाथ, सिद्ध, बुद्ध नहीं होता है। खोजी सिध साधिकाओं की धारा अनंत है, जिसमें ध्यान ग्यान गुदड़ी चेतन चलती है। गोरखनाथ साफ कहते हैं :

“गुदड़ी जुग जुग तै आयी, गुदड़ी सिध साधिका चलाई... (297)”

कुदरत को भ्रमित होना मंजूर नहीं। अंधेरे में भी कांटे पर पांव पडने से कांटा चुभता है। और चेतना मे प्रोपागंडा से धंसे झूठ के कांटे पीढी दर पीढी चलते बडा दुख, जिसे ढोना समझ नहीं है।

गोरखनाथ की सबदी, बुद्ध की बानी सम्हाल कर रखी गयी है, सम्हाली जा रही है, जो धरम जगत की मौलिक धरोहर है।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 161

अधिक तत्त ते गुरू बोलिये, हीन तत ते चेला ।

मन मानै तौ संगि रमौ, नहीं तौ रमौ अकेला ॥

More wisdom: call him the guru,

less wisdom: the disciple.

If the mind agrees, roam together,

otherwise go off alone. (161)

तत्त या तत का मतलब है सत्य, सत ग्यान, कोई ग्यान, स्वभाव, सूत्र, अंतर्समझ, कोई मौलिक बात इत्यादि। तत्त या तत में दो बातें हैं :

1. (अ) अलख संग्यान की अंतर्समझ व आसति दरसण, मतलब ग्यात से मुक्त हो भावपवनां वेदनां दरसण, कि जो शुन्यता व अवधूनन की अंतर्समझ है। इसमें मन की समग्रता होती है, और यह मूलभूत है।

(ब) ऐसे दरसण की अंतर्समझ (इनसाइट) सूं, कुशल पूर्वक सतत ध्यान से, चित्त अवधूनन चलते जीवन में गहराते जाना होता है। सो (अ) और (ब) एक बात है।

2. इसके सिवा, खेती, भौतिकी, कला, विचारशीलता आदि का ग्यान होना, इन बातों में कुछ अंतर्समझ होना, यह हमेशा सापेक्ष व अधूरी बातें होती है। यह सब आंशिक इनसाइट होती है; और इनका दैनंदिन जीवन में, संबंध की गति में, शेयर किया जाना यह दुसरी बात है।

यह सबदी 1 व 2 इन सारी बातों को परिलक्षित करती है। अलख

संग्यान, दरसण, शून्यता व अवधूनन की इनसाइट मूलभूत बात है, और यह अन्य किसी भी आंशिक इनसाइट का इस्तेमाल कर सकती है, पर इसके विपरीत (vice versa) नहीं। आंशिक इनसाइटs यह सापेक्ष व वैचारिक बातें होती हैं। तथा, समझदार मानुस यह देखने के लिए खुला होता है कि, वह कब कहाँ गुरु है, और कब कहाँ चेला।

There are two aspects of *tatta* or *tata*, which mean “real state, nature, truth, wisdom, insight, knowledge, basic principle, an axiom”:

1. (a) Insight into the *alakh* sense and observation of what is (*āsati darasaṇa*) is insight into emptiness and emptying. This is the fundamental insight.

(b) Then, through sustained observation in the light of this fundamental insight, there is deepening.

2. Otherwise, the knowledge of a particular field, such as farming, physics, arts, rational thinking etc. is always incomplete. These are partial insights; and sharing them in relationship is the second aspect.

This sabadi refers to all this inclusively. *Tatta* as insight into observation, emptiness and emptying is fundamental, and may use any partial insights, but not vice versa. Partial insights are relative, thought matters. A wise person is open to seeing where he is a guru, and where a disciple is, or where he himself is a disciple.



DATTA IS ALL FINISHED WITH

As an *avadhut*, Datta *Avadhut* is the head of the *Dashnami* school of *sannyasis*. However, under the influence of *Brahminic* ideologues, Datta is represented as formal head, mostly in the form of Dattātreyā, with three heads, and Shankara's *Vedānta* is established there as if their main thing. Thus, instead of the sense of sweet dying of an *avadhut*, what is talked about there are the ego-soothing ideas of *Aham Brahmāsmi*, I am God, and so on. Shankarāchārya himself lived in ideological fog of *Aham Brahmāsmi*, and then referred to common people as stupid minded (*mudha mate*), he advised them to be devotees of Govinda, to be *bhaktas*, and in this way, he showed his own stupidity or *mudhatā*. Whether Datta ever was an *avadhut* could be doubted, which won't be a wrong thing either, because what is said as coming from Datta does not contain the *alakh* sense or the sense of freedom from the known by knowing its place and limit and the emptying of the mind.

The image of Datta now prevalent among people is probably most ugly one. Nothing is left of Datta *Avadhut* — neither his human form nor what he might have said of the *avadhut* sense. The *Avadhut Gita*, which is put in the mouth of Datta, is apparently a much recent text written to suit *Vedāntic* ideas, which is something like *Siddha Siddhanta Paddhati* that is falsely attributed to Gorakshanath and dated being composed in 18th century to accommodate ideas of *ātmā*, *paramatma*, *aham brahmāsmi* and so on. In line with the *Brahminic* ideas of the *trinity* of Brahma, Vishnu, Mahesh, Datta is mostly

pictured as Dattātreya, with three heads, a *Brahminic dhoti, janeu* etc., instead of the *sādhū* that he was. It's all such ugly.

Furthermore, this constructed Datta or Dattātreya is pictured as the guru of Nath siddhas and saints, and thus by playing a trickery, siddhas and saints are tried to be managed and finished with. It is a matter of common sense to understand that there is nobody as the first or last guru, yogi, Nath, siddha, buddha. Men and women seekers are never ending/infinite chain or flow, which to keep awake, living, is up to us. Gorakhnath straightforwardly says :

The ascetic's rags have come down through the ages,
Kept alive by siddhas and sādḥikās.

The timeless lives in those rags,
Says Gorakhnath, Macchindra's servant. (Sabadi 197)

The sabadis or sayings of Gorakh, and the vast literature of the Buddha, these are kept awake and flowing, which are one of the greatest spiritual treasures of all times. Nature does not like you get deluded in the name of religion or otherwise. Even when you put your leg on a thorn in the dark, the thorn gets stuck in your leg; and thorns that have got stuck in your mind could continue and spoil generations. Let people live with the *alakh* sense and the religion of *bodhi*.



नवनाथ भक्तिसार वा कथासार —

एक धर्माध्व ग्रंथ, गंदा पानी

साफ जाने कि नाथ सिद्ध संग्यान में यह एक मनमुखी व गंदगी भरी किताब है, नाथ सिद्धों की बदनामी की नीयत से है। इसमें नाथों के नाम पर झूठी बातें हैं, जैसे उन्हें अवतार कहना, गोबर के ढेर से जन्म, मंत्र-तंत्रादि कर्मकांड व चमत्कार बखान, दत्तात्रेय को नाथ सिद्धों का गुरु बताना, आदिनाथ वा अंतनाथ की बतियाई, नाथों के हाथों में त्रिशूलादि हथियार, उनके साथ देवी-देवताओं के उलझाव आदि कवि कल्पना व मनोविकृत बातें हैं।

मराठी कवि मालू नरहरि ने अभी दो सौ साल पहले नवनाथों के नाम पर चालीस अध्याय का यह मनमुखी काव्य लिखा; एवं भक्ति-मुक्ति के लाँलिपाँप वाली लाँबी उसे झूठमूठ नाथ पंथ की बात कहते, लौकिक लाभ के लालच दिखा, जनता में प्रचारित करते हैं। सो नवनाथ भक्तिसार में कहा है — इसका पठन-पाठन करने से ऐसे वैसे लाभ मिलेंगे आदि। और जो भगत बनते हैं वह अंध होते हैं।

ऐसे मनमुखी धार्मिक किताबों के पठन-पाठन से यदि कोई लाभ मिलता लगता हो, तो वह कैसे है इसे ऐसे जाने कि गोरख, बुद्ध, सुकरात, तुकाराम आदि के साथ कभी हमारे प्रत्यक्ष संबंध रहे होते हैं, संबंध की गति में उनके भाव-तरंग हमारी चेतना का हिस्सा हुए होते हैं, जो खुशबूदार फूल की तरह हैं ऐसा हम कह सकते हैं। उन भाव-तरंगों की

गहराई, उनके कुछ शब्दों के साथ, हमारे जीवन संबंध में जन जन में आगे चलती है, हम उसे चलाते हैं। और फूल का धरम खुशबु देना है। सो फूल को नाक के पास ले जाने से, पत्थर पर रगड़ने से, या गटर (sewer) में डालने से भी, फूल सुगंध ही बिखेरता है। मगर इसका मतलब यह नहीं कि, फूलों को हम गटर में डाले, गंदगी लगाएं, और फिर उनका सुगंध ले। गटर से भी फूल खुशबु देगा, मगर गटर की गंदगी भी हमारी चेतना का हिस्सा बनेगी — इनके नाम पर हम मंत्र-तंत्र, करमकांड में उलझकर रहेंगे, अवचेतन शक्ति तरंगों के काल दुख जाल में फंसे चलेंगे; हम कॉमन सेंस के साथ चेतन ना हो तो हमारी आगे की गति और प्रदुषित होती चलेगी, सो धरम के नाम पर पीढ़ियां दुख अग्यान में चलती है।

गोरख अर सिद्धों में भक्ति-मुक्ति का कोई महत्व नहीं है — "ये नये ग्यानी भगत घने बिगूता।", "भगति मुक्ति दौ उटाकर मारी।", ऐसे साफ कहते हुए गोरखनाथ भक्ति-मुक्ति की सारी कचरा बातों को साइड कर देते हैं। और ये पंडा दिमाग लोग, कुटिलता करते हुए, गोरखनाथ व नाथ सिद्धों के नाम पर ही नवनाथ भक्तिसार या भक्ति अर मुक्ति की बतियाई चलाते हैं। यह ऐसी ही कुटिलता है जैसे अस्ति जीये सम्यक आस्तिक तथा आत्मा-परमात्मा की सारी बातों को सीरे से नकारने वाले भगवान बुद्ध को ही नास्तिक, महात्मा कहना; और मनमुखी पात्र राम, कृष्ण, विष्णु आदि को भगवान कहना, महात्मा नहीं।

भग्ग रागो भग्ग दोसो भग्ग मोहो अनासवो।

भग्गस्स पापका धम्मो भग्गो तेन उच्चति॥ — भ. बुद्ध।

भग्ग (भंग) > भगवा > भगवान > इति भगवान बुद्ध।

कुदरत को भ्रमित होना मंजूर नहीं, अंधेरे में भी कांटे पर पांव — कांटा चुभता है; और चेतना में झूठ प्रोपागंडा के धंसे कांटे तो बड़ा दुख। संस्कृत में भी सिद्ध सिद्धांत पद्धति, कौलज्ञाननिर्णय, कुलार्णव तंत्र आदि किताबें गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ आदि के नाम पर झूठमूठ चलाई जा रही है, जो खोजी व सुज्ञ जनों को समझने में देर नहीं लगती।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 244

च्यंत अच्यंत ही उपजै, च्यंता सब जुग षीण ।

जोगी च्यंता बिसरै, तौ होई अच्यंतहि लीन ॥

Thought arises from non-thought,
thought is the sorrow of ages.
The yogi gives up thought
and is absorbed in non-thought. (244)



शंकराचार्य व मत्स्येन्द्रनाथ का जन्म

पुणे रेलवे स्टेशन से नजदीक नीलकंठेश्वर मंदिर कॉम्प्लेक्स है। कुछ साल पहले की बात है। वहां स्वामी नित्यानंद की प्रतिमा व पिपल वृक्ष के दरम्यान बैठे विलक्षण प्रतिभा के एक सज्जन, पुणे (पुणा) से ही कहे, किसी और सज्जन को अपने पास की हिफाजत से सम्हाली प्राचीन हस्तलिखित (manuscript) से पढ़कर कुछ बता रहे थे। सारी बात बताते हुए उनका मन सहज था, खुलेपन से था, किसी और के सुनने से उनको एतराज नहीं था। उनकी बात सार रूप में —

वेदांत शंकरा अपने पूर्व जन्म में इंद्र के स्वर्ग दरबार में गंधर्व थे, संगीत गायनादि में कुशल थे, विद्वत थे, सो सम्मानित भी थे। पर जीव जगत काम वासना के एक अचानक उद्भव से उसी स्वर्गीय दरबार में एक अप्सरा के साथ उनसे कुछ तीव्र गलत बर्ताव हुआ। दरबार क्षुब्ध हुआ। इंद्र देवता से शंकराचार्य शापित हुआ : गधे जैसा काम किया, जा, धरती पर गध्नी की योनी से जनम होगा! सो शंकरा का जन्म गध्नी (donkey) की योनी से हुआ।

आगे उस प्रतिभावान सज्जन ने समझाया कि, पिछले तथा विद्वत प्रभाव, गायनादि कौशल आदि से शंकराचार्य ने धरम के नाम पर मनमुखी वेदांत, मन-पोषित देवतां प्रेम से स्तोत्र, अष्टक आदि रचनाएं कियी; तथा अपने अचेतन प्रतिभाव स्वरूप वह स्त्री के प्रति सहज भाव से नहीं रह सके। और बताया कि, उन स्तोत्र, अष्टक आदि गायन में एक विशेष जोर देना होता है, या जोश पैदा होता है। उनके गायन तरंगों में व गर्दभ

(donkey) गान तरंगों में नाभी मूल से जोर लगता है, सो उनमें एक विशेष समानता है, जो रेकार्ड कर अभ्यासी जा सकती है।

सो प्राचीन हस्तलिखित के आगे शिव-पार्वती आख्यान व मत्स्येंद्रनाथ के मछली के पेट से जन्म का संदर्भ देते उन्होंने शंकराचार्य के जन्म की बात को स्पष्ट किया।

सत की एक और बात को आगाह करते हुए उन्होंने कहा कि, काँमन सेंस के परे जीवन समझ की कोई सूझ नहीं होती, काँमन सेंस जन जन में चेतन रहना जरूरी है, इति।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 279

गगन मंडल मै सरवर भरिया, सुषमन बांधि पाली ।

प्यंड बिहुणै अबीलो मोय्यौ, पिंड बिहुणा माली ॥

There is a full lake in the inner heavens,
the power of sushumna leads to the edge.
Without the body the blossom does not open.
The gardener has no body! (279)

This is GG#127.

Suṣaṃaṇa (*sukṣma mana*) means subtle mind, meditation;
moryau (*maur*) means bud, blossom.



योगी/जोगी एवं गृहस्थ, संन्यासी

जोगी और योगी यह उच्चारण भेद वैसे कोई महत्व का नहीं है; यह एक ही बात है। तथा गोरखनाथ जी ने "जोग" व "जोगी" शब्द का ही जादातर उपयोग किया है। जोग/योग शब्द से गोरखनाथ का मतलब है धरम या धम्म, विशेषतः धरम की निरवाण गामिता। अतः, योग/जोग मतलब धरम, दीन; व योगी/जोगी मतलब धार्मिक मानुस, दीनी इंसान। तथा योगी/जोगी = संन्यासी यह भी जादातर प्रचलन में है।

कोई ऐसा कहे कि, जोगी मतलब गृहस्थ, व योगी मतलब संन्यासी, जैसे कि कुछ तत्व प्रोपागंडा करने का प्रयास करते हैं, तो वह उनका अग्यान या चालाकी है, मूढता है।

जोगी/योगी/नाथ/सिद्ध पंथ यह सब एक ही बात है। तथा नाथ पंथ के उपपंथों के रूप में कुछ नये-पुराने पंथ चले आ रहे हैं, (जैसे सतनाथ, धरमनाथ, रावल, आई, ध्वज, वन आदि)। अर्थात, नाथ वा सिद्ध पंथ (सिद्ध पंथ) अनादि काल से चला आ रहा है, पर काल गति में गोरखनाथ इसके पुनर्प्रस्थापक हैं, और नये पुराने सारे पंथ गोरखनाथ के छत्र में हैं, एक हैं; सो गोरखनाथ इसके प्रमुख पुरुष हैं —

"गोरखनाथ पंथ का देव, अनंत सिद्धां मिल पाया भेवा।"

— घोडाचोली नाथ।

Well, पंथ में overall दो ही भेद हैं —

1. संन्यासी योगी/जोगी धारा।

2. गृहस्थ योगी/जोगी धारा।

आगे यह भी जाने कि, सारे जैन तिर्थंकर यह सिद्ध कहे जाते हैं, ज्यादातर के साथ नाथ यह नामाभिधान भी है, पर अलख संग्यान को छोड़कर, आत्मा की अमरता, नित्यता आदि मनमुखी ग्यात के साथ चलते जैन यह वैदिक जैसे ही ग्यात (the known) गामिता से है। सो तथाकथित जैन तिर्थंकर कैसे नाथ व सिद्ध है? बुद्ध का नाम सिद्धार्थ कहा जाता है, और वह तत्त्वतः सिद्धों के सार रूप में है। सिद्ध और बुद्ध धाराओं की मौलिक या तात्विक बात मूलतः एक ही है। सो भगवान बुद्ध और महायोगी गोरखनाथ तत्त्वतः एक होते हुए भी अद्वितीय है।

नाथ पंथ में वर्णाश्रमवाद, जाति-भेद, उच्च-निचता का कोई स्थान नहीं है। हर मनुष्य, हर जीव, अपने विचार-आचार से जैसे भी, पूरे अस्तित्व के साथ जुड़ा होते हुए, स्वरूप गति होता है, कोई किसी का अवतार नहीं, यह खूब समझे। मगर कुछ चालाक तत्व अब स्वरूप के रूप में ही कोई शंकर, पारबती, ब्रह्मा, विष्णु, गजकंठड आदि विचार पैदाइश पात्रों को सिद्धों के पृष्ठभूमि में दिखाने की कोशिश करते हैं, जैसे कि नवनाथ स्वरूप जाप व तद्वत चित्रों के रूप में, ताकि नाथ के नाम पर अवतारवाद चले व नाथ धारा प्रदुषित होकर मैनेज हो जाय। समझने की बात है कि नाथ पंथ में यह गंदगी घूसी हुई है, और कई मूढ साधू या जन ऐसी बातों में बह जाते हैं, जो विडंबना है।

जोग अवरण जोग अभेदं। जोग अपंडित जोग अछेदं। ।

जोग जति सति जोग दया। येहा ग्यान जति गोरष कहा ॥313॥

— गोरख।

सिद्धों की कारुणिकता यह ध्यान-ग्यान, जत-सत की शुद्ध देषना करती है; वह कोई मंत्र-तंत्र, देवी-देवतादि अवाहन या इश्वर नाम मान्यताएं नहीं बताती। कोई व्यक्ति देवी-देवता, मंत्र-तंत्र, पूजा-प्रार्थनादि कर्मकांड करे, उसमें लिप्त होय, तो यह उसकी साधनात्मक स्वतंत्रता है या वैयक्तिक रंजन है, तत्त की बात नहीं। तत्त का सौदा ना हो, सत धरम चेतन रहे, यह हमारी वा मनुष्यता की जिम्मेदारी है।

योग या धरम यह कुदरतन है, और कुदरत ध्यान-ग्यान के लिए गृहस्थ और संन्यासी ऐसा भेद नहीं करती। ध्यान-ग्यान की गंभीर साधना व प्रयोगों के लिए, कुछ व्यावहारिकता के साथ, संन्यासी-गृहस्थ ऐसा भेद हमने, भले गोरख, बुद्ध जैसे महासिद्धों ने, बनाया है, इसकी जगह व मर्यादा महसूस करना यह सूझ की एक बात है। वैसे निसर्गतः गृहस्थ व संन्यासी तो दूर, स्त्री व पुरुष यह जो कुदरत का बनाया भेद है, वह भी ध्यान-ग्यान में नहीं है। सो हम एक दूसरे का समादर करते हुए सूझ पूर्वक चले यह परिलक्षित है।

आगे यह भी समझे कि, "नवनाथ, चौरासी सिद्ध" वास्तविकता ना होकर एक विचार की पैदाइश बात है बस्, जिसकी विचार के परे कोई सच्चाई नहीं। वास्तव में सिद्ध प्रवाह यह काल की अनंतता में अनंत धारा है। गोरखनाथजी के शब्दों में —

सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता, अनंत सिद्धां की बांणीं।

सीस नवावत सत गुर मिलिया, जागत रैणि बिहांणीं॥

— गोरख, सबदी 107

सो यह खूब जाने कि नाथ/सिद्ध पंथ, या कोई भी सद् धरम धारा, खोजी स्त्री-पुरुषों, सिद्धों व साधिकाओं द्वारा ही जागती व चलती है; कोई मनमुखी आदिनाथ या अंतनाथ/गुरु, देवी-देवता इसके पैदा करने वाले या चलाने वाले नहीं होते। गोरखनाथजी के शब्दों में —

गुदड़ी जुग च्यारि तैं आई, गुदड़ी सिध साधिकां चलाई॥

गुदड़ी में अतीत का बासा, भणंत गोरषनाथ मछिंद्र का दासा॥

— गोरख, सबदी 197

भाई, खूब जाने कि भले हर जीव का, या धरती सहित हर वस्तु (plants and planets) का, शारिरीक रूप से (materially) कोई शुरूआत व अंत होता है, उत्पत्ति, स्थिति व लय होता है, परंतु चैतसिकता में जीवन गति की कोई शुरूआत व अंत फिक्स नहीं किया जा सकता, नहीं होता। और ध्यान की अगनि में चैतसिक गति का अंत वा ending यह धरम पथ में मौलिक समझ की बात है, जिसके बगैर अनेकों संकल्पनाओं के साथ भी जीवन गति यह काल दुख अग्यान ही रहती है।

कछ्छ मगज भीतरी ख्याल रे। — गोरख।

Dear, isn't there some sense in your brain?

योग अलख विग्यान! — गोरख; अलख निरंजन अवधू! — सिद्धs.

अत्ताहि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परोसिया॥ — बुद्ध।

आगे आगे गोरख जागे!

Let us keep (the way of) intelligence awake!



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 295

आलस निद्रा छींक जंभाई, उदक आप रु प्रान समाई ।

गोरख कहे अध्यातम एहा, साधंत जोगी देह विदेहा ॥

Drowsiness, sleepiness, sneezing, yawning,
the funeral water and tears all contain prana.

Gorakh says, spirituality is here and now,
a yogi works through body and sleep. (295)

This is GG#285.

गहरी निद्र में शरीर व मन दोनों के बारे में अचेतनता होती हैं। सपनों वाली निद्र में मन में क्या होता इस बाबत हम चेतन होते हैं, भले यह जागे हुए चेतना से कुछ अलग होता है, मगर सामान्यतः शरीर के बारे में हम अचेतन होते हैं। मतलब, निद्र में हम जादातर शरीर पर नहीं होते हैं, एक विदेह स्थिति में होते हैं। देह का अर्थ है शरीर; और विदेह का अर्थ, चैतसिकतः, शरीर से कुछ कटकर, अलग जैसे होना। जब हम सजग

होते हैं, जागते हुए व सोते समय ध्यान करते हैं, (निंद अपने से आती व जाती है), ध्यान निंद में अपने आप से प्रवेश करता है व चलता रहता है, जो हम हकिगतन महसूस करते हैं, चाहे इसमें हम सपने कभी सपनों की तरह महसूस करते हैं या नहीं, मगर उनमें भाव-पवनां के साथ ध्यान से होते हैं; और जब हम निंद से जागते हैं, तो हम ध्यान करते हुए जागते हैं। नाद के साथ उनमन में भी हम कभी विदेही होते हैं? अपना दीया खुद बने।

In deep sleep we are unaware of both the body and the mind; in dream sleep we are aware of what happens in the mind, though it is different from normal awareness, and generally we are unaware of our body. In sleep we are mostly not in the body, we are in a state of *videha*. *Deha* literally means the body; and *videha* means separated, distinct from the body. When we are awake and meditating, and then go to sleep (sleep comes and goes on its own), meditation enters and continues in sleep automatically, naturally, which we actually perceive, though we may sometimes be aware of our dreams as dreams, but are aware of feelings therein meditatively; and when we wake up, we wake meditating. Be a light unto yourself.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 44

घरबारी सो घर की जाणै, बाहरि जाता भीतरि आणै ।
सरब निरंतरि काटै माया, सो घरबारी कहिए निरञ्जन की
काया ॥

The householder knows the house,
going out and coming back in.
Always and everywhere cutting through maya,
we say that householder is the unstained body. (44)



जैन परंपरा की कुछ बात

जैन धरमनाम परंपरा यह भारत की तथाकथित रूप से एक प्राचीन धारा है ऐसे कहा जाता है; परंतु इसकी प्राचीनता, जैसे भी हो इसकी नियति, वैदिक परंपरा से जुड़ी हुई है यह कहा जा सकता है। बात अहिंसा की हो या धरमनाम अति की, या जैसे भी, जैन परंपरा यह आर्य समाज जैसी किसी समय वर्णाश्रम ब्राह्मणवाद से बनी एक बात दिखती है। आत्मा की नित्यता, अमरता जैसे ग्यात को साथ लेकर चलने वाले, शाकाहार मांसाहारादि आइडियाज के साथ छुआछूत बरतने वाले, आलू, प्याज जैसे सामान्य भोजन पदार्थ बाबत अतिवादी विचार रखने वाले, स्त्री का समाज में दुय्यम दर्जा रखनेवाले, (जैन परंपरा में भी वैदिक जैसे स्त्री का दुय्यम दर्जा है, तथा स्त्री का निरवाण वा मोक्ष-मुक्ति भी तथाकथित रूप से पुरुष जन्म मिलने पर संभव है, स्त्री होते हुए नहीं, ऐसा कहा जाता है), यह सब इनके आर्य समाजी जैसे वैदिक जड़ से होने की बात दिखाते हैं। वैदिक व जैन परंपरा मूलतः अलग नहीं दिखती। धरम धंधा या व्यापार धंधा के लिए lobbying को लेकर इनमें कोई भेद नहीं — संबंध का आइना किसी को छुपाता नहीं। इन शाकाहारियों के सामिश या सामान्य भोजन वालों के प्रति विचार मनरुणता की हद तक विकृत देखे जा सकते हैं; पर मांसाहार के व्यापार को ये शायद ही बुरा माने।

धरम के नाम पर चेतसिकता में फाउंडेशन ही गलत हो तो गलत बातें चलाने में भी गर्व होता है। अहं के लिए कुदरतन भव ही संभव है, मोक्ष

मुक्ति या निरवाण कभी नहीं। लोक-परलोक आस वेदों को सनातन कहना, कि जो शब्द वेदों को पता भी नहीं, क्या है? सर्व धर्म समभाव यह संकल्पना एक झूठ है, जो मूलतः अपनी धरमनाम परंपरा बचाने की वकालत से ज्यादा नहीं है, जिसके ये दोनों समान रूप से पक्षधर हैं। धरम का अपना महान अस्तित्व हैं, जो किताबी धर्माधता नहीं — जैन, वैदिक, कुरानिक आदि नहीं, परंपराओं की बात नहीं। और यह समझना काँमन सेंस की बात है। ऐसे हिंदू के नाम पर जैन, वैदिक अपनी परंपरा चलाने का जुगाड़ चलाएं और बात है।

अलख संग्यान को छोड़ आत्मा की नित्यता, अमरता आदि ग्यात को लेकर चलने वाले ये जैन तिर्थंकर कैसे नाथ व सिद्ध हैं? जैसे सिख व इस्लाम को मँनेज करने के लिए आर्य समाज बना दिखता है, ऐसे ही किसी समय सिद्ध व बुद्ध धारा को मँनेज करने के लिए, ब्राह्मणवाद की एक शाखा के रूप में, जैनवाद चला ऐसा दिखता है। रजनीश सहित अनेक जैन यह मिनी वेदांत अष्टावक्र गीता जैसी मनमुखी आइडियालाजिकल बातों को, उनकी आत्मा आदि को ले एक वैचारिक जड के कारण, साथ लेते दिखते हैं।

यह खूब समझे कि, अहं से भव ही संभव है, मोक्ष-मुक्ति नहीं। जैन, वैदिकादि में अहं के मोक्ष-मुक्ति की सोच यह एक जैसी बात है, अग्यान गामिता है। अहंभाव द्रष्टा यह भयानुरागादि दृश्य का हिस्सा है व जीवन संबंध की गति में है; इसे समझकर, ग्यात की जगह व मर्यादा समझकर, अलख संग्यान सूं भावपवनां दरसण चैतसिक शुन्यता है, निरवाण

गामिता है। सम्यक दृष्टि अर साधना की अगनि में अहं का मरणा है, जो जीते जी मीठा है।

बुद्ध, गोरख, जिद्दू यह समग्र धरम पथ के चार माइलस्टोन बताते हैं। और जैन कहते हैं कि, महावीर ने या तिर्यकरों ने चौदह गुणस्थान या माइलस्टोन बताएं हैं, बड़ा सुक्ष्म अनालिसिस किया है आदि। अब, जिन्हें नहाने के स्थान का पता नहीं चले, वह चौदह गुणस्थान बताने चले — इसे कोई स्पष्ट करेगा! इधर उधर से लिए मुनि, सामायिक, अनारंभ आदि टैगिंग बातों में प्राण नहीं होता। धरम अर पथ की सम्यक सूझ किसी मन मुखी अतिवादीता से नहीं, कथा कहानीयों के जंजाल से नहीं, बल्कि सिद्धान्त, साधना व दैनंदिन आचरण की मज्झिमता से झलकती है। अर्थात्, धम्म या दीन यह सिद्ध-बुद्ध, अल्लाह-रसूल वा किसी अवतार-मसीहा का मुहताज नहीं, किसी की मनमर्जी की बात नहीं, खुले जेहन सूं समझकर चलने की बात है। सो बोधि देषना साफ पाक है।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 36

अति अहार यंद्री बल करै, नासै ग्यांन मैथुन चित धरै ।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै काल, ताके हिरदै सदा जंजाल ॥

Too much food excites the genitals,
disturbs awareness, and the mind turns to sex,
sleep takes over, time grabs you,
and your heart is always in trouble. (36)



जीव-जगत दया व आहार चक्र

जीव जगत दया-करुणा धरम की नेक बात है,
गाय वा सुअर के नाम किताबी मैल और बात है।

जीव जगत दया-करुणा के साथ भोजन चक्र समझने की एक बात है, लकीर की फकीरी नहीं। तथापि शाकाहारी लोगों के मांसाहार बाबत विचार अमूमन मनोरुणता की हृद के देखे जाते हैं; व मांसाहारी उसके लालच में। हालांकि, लालच किसी न किसी रूप में इन सबमें कामन (common) है, दुख है। शाकाहारी होना अच्छी बात है, ध्यान ग्यान में एक सहायता है, पर मांस या मांसाहारी से प्रकट अप्रकट द्वेष-भाव मूढता है।

वैदिक-जैनवाद का (+) गौ वा शाकाहार प्रेम यह किताबी अधिकारीकता वा परंपरा की ग्यात ग्रसितता से है। मुसलमानों के नकारात्मक (—) सुअर प्रेम जैसी बात है यह। गौ को शायद ही सम्हालने वालों का गौ प्रेम, हिंदूत्व के आड में वैदिकता, धर्माधिकारीता का ढोंग, यह राजभोग का जुगाड व अहं मान्यता की बातें हैं।

शाकाहारी लोग मनुष्य-मनुष्य में, स्त्री-पुरुष में भेद करते देखे जाते हैं; उच्च-नीचता, अस्पृश्यता जैसे अमानवीय व्यवहार को बढ़ाते देखे जाते हैं। शाकाहारी लोगों में मानवीय गरिमा की समझ अविकसित देखी जाती है, शाकाहार अहंगंड बात बन जाती है। शाकाहार वा मांसाहार से कुशल-अकुशल कर्म का संबंध है? सहज भोजन व ध्यान-ग्यान में गंभीरता महत्वपूर्ण है।

मांस व मछली यह कुदरतन जीव-जगत के अन्न का हिस्सा है, कुछ डोमेस्टिक जानवरों के मांस का, बीफ वा मछली का, अन्न के रूपमें मनुष्य इस्तेमाल करता हैं, और इसका बंद होना कुदरतन असंभव है। अर्थात्, कोई व्यक्तिशः शाकाहारी है अच्छी बात है।

“दुख समुदय निरोध मग्ग” को सम्यक रूप से विषद करने वाले, जीव जगत दया-करुणावान, बुद्ध ने जीवन गति की तथता व मांसाहार को समझकर मांसाहार का विरोध नहीं किया है; मांसाहार बाबत आम जन व साधू के लिए कुछ तथता दर्शी तत्त बताये हैं। साधू को पशुहत्या करने से रोका है पर भिक्षा में मिले मांसाहार से नहीं। सो गोरख अपने योगी (संन्यासी) को दीक्षा के बाद पहले सामान्य भोजन के रूप में कच्चा प्याज अर घी-रोटी (bread and butter with raw onion) देते हैं, व उनके

लिए यह सामान्य भोजन का हिस्सा है। भारत में जहां प्याज, लहसून, आलू को भी धरम-बाह्य श्रेणी में रखने वाले धर्मांध हैं, ऐसे में घी-रोटी व प्याज आदि भोजन समझने की बात है।

सामान्य भोजन व सहज जीवन में, मतलब जीवन गति की तथ्यता में, ध्यान-ग्यान पथ है; वैदिक, कुरानिक जैसी किताबी अधिकारिकता की आइडियल बातों में नहीं। आहार में सापेक्ष हिंसा जीवन चक्र की तथ्यता है। विचार पैदाइश हिंसा मनुष्यों की बात है, अमूमन किताबी अधिकारीकता व अवलंबन मानसिकता की ग्यात ग्रसितता से होती है, जिसका कुदरतन कोई जस्टिफिकेशन नहीं। आहार सापेक्ष बात है, और कहां कैसा इसको सापेक्षता में समझना होता है, धर्मांध होकर नहीं। जो समझना ही ना चाहे ऐसे धर्मांधों के साथ सतसंग नहीं। दुसरे शब्दों में, मांसाहार करने वाला भले हिंसक हो ना हो, मगर मांसाहारियों के प्रति नफ़रत निश्चय ही हिंसक है, हिंसारंभी है। अर्थात्, वन्य जीव संरक्षण, वा पालतू जानवरों में जीवन समझकर मौत तक उसके खानपानादि की फिक्र, यह मानुसपन की बात है, कानूनन होनी ही चाहिए। आइडियल होना एक बात है, जमिनी हकिकत व जीवन चक्र समझते जीना दुसरी बात है।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi 140

अवधू षारै षिरै षाटै झरै, मीठै उपजै रोग ।

गोरख कहै सुणौ रे अवधू, अंनै पांणीं जोग ॥

Avadhu! Salty food causes loss of energy,
acidic food is draining,
diseases are produced by sweet food.
Gorakh says, listen Avadhu,
grains and water for yoga. (140)

गोरखनाथ व नाथ सिद्ध अपने जोगी को दीक्षा उपरांत पहले सामान्य भोजन के रूप में घी-रोटी अरु कच्चा प्याज देते हैं। नाथ पंथ में योगी, खोजी साधकों के लिए प्याज, लहसुन यह सामान्य भोजन के हिस्से के रूप में स्वीकार्य है। ऐसे ही मज्झिमता से भिक्षुओं को बुद्ध कहते हैं, मांसाहार के लिए किसी जीव की हत्या कर उसे ना खाएं, किसी दूसरे से जीव हत्या करवाकर उसे ना खाएं, किसी जीव की हत्या होते हुए आप देखे उसे ना खाएं, आपको मांसाहार पसंद है इसलिए ना खाएं; तथापि, कभी आपके भिक्षा पात्र में कोई मांस या मछली का आहार दे, उस आहार को आपने खाना है, बर्बाद नहीं करना है।

On initiation into the Nath *Panth*, Gorakh and siddhas give raw onion, *roṭī* (bread) and *ghī* (butter) as the first normal food to a new yogi. Onion and garlic are accepted as parts of normal food for yogis, *sādhus* or seekers in their daily life in the Nath

Panth. In the same spirit of moderation, the Buddha said to the monks, don't kill an animal to eat its flesh, don't have others kill it so as to eat its flesh, don't eat the flesh of an animal when you see it being killed, don't eat meat because you like it; however, when you are given meat as food during your alms begging, you should eat that and not waste it.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 284

जोग का मूल रे दया अर दान, वदंत गोरखनाथ ब्रह्म ग्यान ।
जब लग हिरदे दया न आई, जब लग कहिये सिद्ध कसाई ॥

Dear, the root of yoga is compassion and giving,
Gorakhnath declares the divine wisdom.
As long as the heart is not filled with compassion,
a siddha is like a butcher. (284)

This is GG#239.



मुहम्मद विचार

1400 साल पहले ह. मुहम्मद व इस्लाम ने स्त्रियों को दिए हक आश्चर्यजनक रूप से नेक हैं; ऐसे ही कामगारों, मजदूरों, गुलामों व आम जन के बारे में हैं। सो भले धरम के नाम पर कयामती आस जैसी अफलातून बातें, या पत्थर मारने की सजा, वा एक हदीस बतायेगी कि औरत का मुकाम कितना ऊंचा है, औरत के पैरों में जन्नत है, तो वहीं और हदीसों ये बताएंगी कि सबसे बड़े पाप की जड़ औरत है, इन जैसी अमानवीय बातें, धरम के नाम पर किताबी अधिकारिकता व अवलंबन मानसिकता की अंधता लिए, कुरान वा संबंधित किताबों में हैं, फिर भी मुहम्मद से प्रेम क्यों है इसे मुस्लिमों के साथ मुस्लिमेतर को भी समझने की जरूरत है। तथा समय के साथ मुस्लिमों में मुहम्मद प्रेम के साथ मोमिन वा बोधि संग्यान चेतन होना जरूरी है। मोमिन होना बोधि धरम की साफ पाक बात है, हकीकत पसंदी है, कयामती ख्वाब नहीं।

इस्लाम अर स्त्री हक्क :

पढना, ज्ञानार्जन करना स्त्री व पुरुष दोनों के लिए आवश्यक कर दिया, पिता की संपत्ति में लडकी को हिस्सा दिया (यह हक विवाहिता को अमरीका में 1861 में और भारत में अभी दिया गया); शादी के लिए लडकी की पसंद कंपल्सरी कियी, उसके मर्जी के खिलाफ उसकी शादी नहीं होनी; औरत को अपना काम-धंधा वा व्यवसाय करने की स्वतंत्रता दियी; महिला को संपत्ति रखने का अधिकार दिया। [वैदिक वर्णाश्रमवादी परंपरा में स्त्री-शुद्रादि की क्या बात है यह कहने की

जरूरत नहीं है।] स्त्री को कोई पुरुष पसंद आये तो उसे विवाह का प्रस्ताव भेजने का अधिकार दिया; शादी में स्त्री की तरफ से दहेज लेना मना किया; पति की तरफ से स्त्री को कुछ रकम देना नियमित किया; स्त्री को अपने पति को घटस्फोट देने का अधिकार दिया; विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार दिया; स्त्री भ्रूण हत्या निषिद्ध कियी; लडका ही वंश का दीपक है यह संकल्पना खत्म कियी आदि। : (Translated from Samir Mujawar's article in Marathi.)

किताबी अधिकारिकता वाली वैदिक वर्णाश्रम यह उच्च-नीच मानसिकता के साथ पिशाच (satanic) धरमी है, मानवीय गरिमा की अवमानना से है, जो हिंदूनाम परजीवीता से चलते शायद ही बदले, इसे साइड कर देना समझदारी है। सारे वैदिक, पुराणिक ऋषियों में मुहम्मद तथा जिजस की समाजाभिमुख नेकी व बराबरी नहीं है। सिद्ध-बुद्ध संग्यान मानवीय गरिमा सूं समता बंधुता के साथ बहुजन हिताय सुखाय है, अलख संग्यान अर अनित्य बोध सूं संपूर्णता से सत धरम देषी हैं। तथा यह जाने कि, धरम की बहु आयामी सम्यक समझ के लिए बुद्ध को बाइपास नहीं किया जा सकता।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 11

नाथ कहंतां सब जग नाथ्या, गोरष कहंतां गोई ।

कलमा का गुर महंमद होता, पहलैं मूवा सोई ॥

Nath says the whole world is linked together;
Gorakh tells the secret.
Muhammad taught kalima,
he worked, and he too died. (11)

गोरख काल के जलने का, कालांत का, भेद बताते हैं, चैतसिक मीठे मरण का रहस्य बताते हैं (cf. ##26, 291).

Gorakh tells the secret of the ending of time, of dying psychologically (cf. ##26, 291).



गोरख के नाम कैसा वैदिक धंधा

गोरखनाथ कबीर से पहले हुए। कबीर ने गोरख की प्रशंसा में झड़ी लगा दी है। कबीर ने लिखा है कि गोरख की साखी, गोरख सबदी, अमर है। मैं तो मन को ही गोरख बना देना चाहता हूँ।

गोरख से तुलसीदास बहुत नाराज थे। वे मानते थे कि कलियुग लाने में गोरख की भी भूमिका है। ध्यान रखिए, तुलसी ने अपने पूरे साहित्य में हिंदी के सिर्फ एक कवि का नाम लिया है और वे कवि गोरख हैं। मगर तुलसी ने गोरख का नाम उनकी निंदा करने के लिए लिया है। तुलसीदास कहते हैं कि, "गोरख जगायो जोग, भक्ति भगायो लोग।"

आप समझ जाय कि बुद्ध, गोरख, कबीर वैचारिक रूप से मूलतः एक ही रसायन थे, और यही कारण है कि हिंदी में गोरख को बदनाम करने के लिए गोरखधंधा जैसे शब्द का प्रचलन चलाया जा रहा है। इसमें कुटिल भाव यह है कि, गोरखधंधा शब्द आगे चलकर यह साबित करेगा कि गोरखनाथ तिकड़मबाज कवि थे, जो तिकड़म से अवैध कमाई किया करते थे आदि। गोरखधंधा शब्द से यही भाव वैदिकधंधा वालें चलाना चाहते हैं, और ऐसे ही अस्ति जीये सम्यक आस्तिक भगवान बुद्ध के बारे में झूठमूठ नास्तिक प्रचार चलाकर जन मानस में बुद्ध के प्रति परार्थ भाव पैदा किया जाता है। ऐसे में भ्रमित होना मूढता है।

गोरखनाथ यह अलख विग्यान अर ध्यान-ग्यान संग्यान के साथ काल दुख निर्जरा सून निरवाण पथ बताते हैं, कोई लोक-परलोक आस लेन-देन

कालांध बातें नहीं। अध्यात्मिक साधना के नाम पर भी गोरखधंधा शब्द प्रयोग किसी भी तरह से सम्यक नहीं है, और ऐसी कोई भी बात मनमुखी है। मतलब, गोरखधंधा इस शब्द का किसी भी रूप में जस्टिफिकेशन नहीं है, भले इसे कोई शंकराचार्य, रजनीश, कव्वाल, कलाकार या मिडिया कहे, या कोई इसका fabrication, glorification, justification करे। अर्थात्, वैदिकधंधा यह शब्द प्रयोग सटीक है।

शंकराचार्य तत्वों का, ब्राह्मणवादीयों का धरमनाम मैला मगज जाने।
सिद्ध बुद्ध सूं साजिश लोक-परलोक आस कालांध वैदिकधंधा जाने॥

—Rajendra Prasad Singh,
(a bit edited version of his Facebook post).



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 120

कहणि सुहेली रहणि दुहेली, बिन षायां गुड़ मीठा ।

षाई हींग कपूर बषाणै, गोरण कहै सब झूठा ॥

Talking is easy, living it is tough,
you never ate raw sugar but say it is sweet,
you eat asafoetida and say it is camphor,
Gorakh says, this is all lies. (120)



वैदिक धंधा

धर्म के नामपर धंधा करनेवाली लॉबी गोरखधंधा यह शब्द-प्रयोग अपनी चमडी बचानेके लिए, व एक प्रकारसे गोरख को बदनाम करने के लिए, झूठ के साथ चालाकी से चलाते है। और कई जन मूढता वश ऐसे दुष्प्रचार से भ्रमित होकर इसका प्रयोग करते है; तथा कुछ TV चैनल, कव्वाल या रजनीश जैसे भी इस षडयंत्र में लिस देखे जा सकते है।

गोरख हमें अलख विज्ञान, ध्यान-ग्यान दीप, निरवाण पथ बताते है; किसी कर्मकांड से लोक परलोक आस की बात नहीं बताते, कोई धर्मनाम धंधे की नहीं बताते, इसे समझे। गोरखधंधा नाम से तथाकथित किसी अध्यात्मिक साधना की बातें एक झूठ प्रोपागंडा है; और ऐसे में भ्रमित होना मूढता है। जै आस व लेन-देन बात तै धंधा। चाहत और लेन-देन का बाजार एक ही बात है; और वेद वांग्मय एवं वैदिक परंपरा इससे संबंधित काला-गोरा मसाला है, तांत्रिक-मांत्रिक है। It is absolutely so! सो वैदिकधंधा यह शब्द-प्रयोग सटिक है, जो तृष्णा और विचार के चलते ग्यात से ग्यात की गति है।

गोरखनाथ हमे मन मानस की काल गति, अलख संग्यान, शुन्यता, दरसण, कालांत ऐसी चैतसिक मूलभूत बातें (fundamentals) बताते है, और इसके साथ ही साधना के स्वातंत्र्य का महत्व उजागर करते हैं, जो मनमर्जी की बात नहीं, धरम के नाम पर कोई काम्प्रोमाइज नहीं, सूझ-बूझ की बात है। सो इस कुटिल या मूढ प्रोपागंडा को भी जाने कि,

साधना के नाम पर उलझने के कारण लोग गोरखधंधा कहने लगे — ऐसा बिल्कुल नहीं है। क्योंकि धरम की अस्तित्वगत मूलभूत बातें समझने में साधना के नाम पर यहां वहां उलझने का प्रश्न ही नहीं है, जैसे भक्तियोग, राजयोग, हठयोग, कर्मयोग, क्रियायोग, मंत्र-तंत्रयोग आदि के नाम पर मूढ जन उलझते हैं।

हंड ब्रह्मंड चहोडीया , मानूं बेस्या अनं।

कोई कोई कोरड रह गया, यूं भाषै नाथ रतन॥

— रतन नाथ, गोरख सबदी 211.

(बेस्या = बासा, बासी, stale; prostitute; व भाषाई अलंकार से ग्यात, the known, तृष्णा, desire.)

ये भी समझ ले कि जिस अहंगंड विचार ने लोक या परलोक आस के साथ अनेक पूजा-हवन विधा पैदा कियी, वही विचार और आगे बढ़कर भक्ति मुक्ति के लेन-देन के लालीपोंप की बात करता है; और उससे भी आगे अपने आपको अहं ब्रह्मास्मि के उच्चासण (high pedestal) पर रख अहंतोष में उलझता है। विचार चाहे विचिकित्सक हो, मिमांसक हो या समाधि स्थगित, यह काल, भव, दुःख, अग्यान गति होता है।

अध्यात्म के खोजी जनों के लिए नव नाथ चौरासी सिद्धों के कहाणीयों की जरूरत नहीं होती है, ना शाबरी मंत्र-तंत्र वा पोथी पुराण कल्पना रमण की। चैतसिकतः ग्यात गामिता से, जैसे जिद्दू कहते हैं, आप हमेशा वही अनुभव करेंगे जिसमें आप विश्वास करते हैं, और कुछ नहीं, और

यही आपके अनुभव को अयोग्य सिद्ध करता है। (You will always experience what you believe, and nothing else, and this invalidates your experience. — Jiddu Krishnamurti.) अलख संग्यान सूं बाला हो जीवन गति में यथाभूत सत (भाव-पवनां) दरसण सूं बोधि की आंतरिक सूझ मूलभूत है।

वेदे न सास्त्रे कतेबे न कुरांणे, पुस्तके न बंच्या जाई ।

ते पद जानां बिरला जोगी, और दुनी सब धंधै लाई ॥

— गोरख, सबदी 06.

कहै गोरख, जिद्दू अरु बुद्ध, जे खोजै ते होई सिद्ध।

दरसण शुन्य, दरसण ध्यान, दरसण खोलै अलख विग्यान॥

अलख अकथ संग्यान, विग्यान विशुद्ध ग्यान।

सूरजनाथ दरसण जीवै, आगे आगे गोरख जागै॥

— सूरजनाथ।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 270

कथणी कथै सो सिष बोलिये, वेद पढ़ै सो नाती ।

रहणी रहै सो गुरू हमारा, हम रहता का साथी ॥

He speaks of what's been said, he's a disciple,
he studies the Vedas, he's a grandson.
He lives life, he is my guru,
I live as his companion. (270)

"कथनि कथै" यह उन धरम देषनाओं की बात है जो किताबी अधिकारिकता से नहीं होती है, आप उनके प्रति शंका कर सकते हैं, उनकी चीरफाड़ कर सकते हैं, और उनके सत असत को चैतसिक अधिकारिकता व अवलंबन मानसिकता के बगैर खुले मन से देख समझ सकते हैं, जैसे कि गोरख, बुद्ध, जिद्दू की देषना। सो कोई भी सिष्य, सिख या चेला यह एक मुक्त विचारक या शोधक, साधक होता है।

"वेद पढ़ै" यह उन माननेवालों का व तथाकथित धार्मिक किताबों का निर्देश है जो धरम के नाम पर किताबी अधिकारिकता से होते हैं, मान लिए जाते हैं। वेद, कुरान को माननेवाले अपने आप को उन किताबी मान्यताओं से मुक्त नहीं करते, उनकी तथाकथित मूलभूत बातों पर शंका, प्रश्न कर उनको नकार नहीं सकते; या अहं व आसक्ति वश ऐसी मान्यताओं के भगत, वकील बन जाते हैं। सो ऐसे में निरालंब खोज व

बोधि की अंतर्समझ जगने की संभावना नहीं होती है। मानने वालों की एक कानी आंख हमेशा उनकी किताबी मान्यताओं में अटकी होती है, जो संबंध के आइने में आप सहज समझ सकते हैं। "नाती" मतलब छोटा बालक या बालिका जिसे शारिरिक आधार की आवश्यकता होती है; तथापि, यहां इससे उन बालिश लोगों की तरफ इशारा है जो वेद, कुरान, बाइबल जैसी किताबों पर चैतसिकतः अवलंबित, आश्रित होते हैं।

Kathani kathai, refers to what's been said, those religious teachings that are not authoritarian, which you can doubt, dissect and look into without suffering psychological dependency, from such seers as Gorakh, the Buddha. So a disciple is a free thinker, or explorer.

Veda parhai, he studies the *Vedas*, refers to those followers and religious texts which are accepted as authoritative. You are not supposed to free yourself from the known, doubt or dissect and refute the *Vedas*, *Quran*. Thus, there is no scope for unconditional enquiry and insight into divine fire. A *nātī*, grandson, literally means a young boy or girl who needs physical support, however, here it implies those childish people who are psychologically dependent on such books as the *Vedas*, *Quran*.



अष्टावक्र गीता

अष्टावक्र नाम का व्यक्ति कभी प्रत्यक्ष था यह doubtful है। वह शरीर से अपाहिज (crippled) था या नहीं यह अलग बात है। आगे, अष्टावक्र शरीर से अपाहिज था तो भी ऐसी बुरी बात नहीं है, अष्टावक्र मन से अपाहिज था, जो मानसिक विकृति है; या जिसने भी अष्टावक्र यह पात्र पैदा किया व उसके मुंह में मिनी वेदांत कही जाने वाली अष्टावक्र गीता लिखी वह मन से अपाहिज था ऐसे कहा जा सकता है।

कहना चाहिए कि मनमुखी अष्टावक्र गीता यह वेद-वेदांतिक अहं ब्रह्मादि की अहंतोषी बातें चलाने की तिकड़म है। साथ ही यह भी जाने कि, अहं ब्रह्मा का गुबार लिए वेदांती आचार्य शंकर यह देवी-देवता स्तुति में अष्टक, स्तोत्र आदि के साथ भज गोविंदम् मूढमते पर आ गये, भगत बन गये, व अपनी मूढता खुद ही दिखा दिये। धरम के नाम पर इश्वरनाम कल्पना में रमते, भक्ति मुक्ति के लालीपाँप में अहं का तथाकथित मोक्ष चाहते, इस बात का होश नहीं कि अहं के लिए कुदरतन भव ही संभव है, मोक्ष मुक्ति या निरवाण नहीं —

सबद ही में कहे ब्रह्म, मनसा नहीं साधै,
ते जोगी मन मनसा कदे नहीं बाधै।
भणत गोरखनाथ मछंद्र का पूता,
ये नये ग्यानी भगत घने बिगूता॥

— गोरख, सबदी 310



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 241

धोतरा न पीवो रे अवधू, भांगि न खावौ रे भाई ।

गोरख कहै सुणो रे अवधू, या काया होयगी पराई ॥

Dear Avadhu, don't smoke dhatura,
O brother, don't eat bhang,
Gorakh says, listen dear Avadhu,
your body will become addicted. (241)



मराठा यादव पटेल राजपूत

मराठा यादव पटेल राजपूत ब्ला ब्ला और क्षत्रिय?

ऐसे तुम मराठा राजपूत कुर्मी आदि क्षत्रिय नहीं, शुद्र हो!

कोई भी स्त्री या पुरुष वीर व विवेकी होता है तो वह सूर होता है, मार्शल होता है, वैदिक वर्णाश्रमी विचार की पैदाइश क्षत्रिय नहीं। इसे खूब समझे। अर्थात्, खेत-खलिहान, खेतिहर से खत्तिय होना यह सिद्ध-बुद्ध संग्यानी बहुजन हिताय है, जो वैदिक वर्णाश्रम ब्राह्मणवाद का क्षत्रिय जी हुजूर होने से मूलतः अलग है।

जैसे पंजाबी, बंगाली, तमिळी आदि क्षेत्र या समुह वाचक शब्द है, वैसे ही मराठा, मराठी यह क्षेत्र या समुह वाचक शब्द है, महाराष्ट्र व मराठी लोगों का निर्देश करनेवाले है, किसी विशिष्ट जाति वा समुदाय वाचक नहीं। और यह समझना कॉमन सेंस की बात है। कौन तुम्हें हवा भरता है मराठा, राजपूत आदि होने की, तथाकथित क्षत्रिय होने की? तुम खुद भर लेते हो या और कोई भरता है? व कौन तुम्हारी हवा निकाल देता है, तुम्हें शुद्ध बनाता है? कैसे और क्यों? आपको भरमाने के लिए क्षत्रियादि की बातें है, पर वर्णाश्रमवाद के लिए ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर ऐसे दो ही वर्ण है। बाकी मनुष्यों जैसे तुम "मानुस" हो, इतना समझ ले, अहंगंड में ना उलझे, तो तुम्हें कोई वर्णाश्रमवादी आदि बहका नहीं सकते।

हिंदूत्व के नाम, वर्णाश्रम उच्च-नीचता के नाम, प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष चलने वाली सामाजिकता मनुवाद है, नकली सनातन है, जो किसी भी रूप में होय पिशाच धरमी (devilish) है, बहुजन हित में कदापि नहीं। किसान कामगारों को अशिक्षित व कमजोर रख चूसते रहना इसकी पुरानी नीति है, जिसमें कुछ तत्त इनका अंदर ही अंदर साथ देते दिखते हैं, जो विडंबना है। भ्रमित होना कुदरत को मंजूर नहीं। ऐसे में तथाकथित क्षत्रियता की आस, जो ब्राह्मणवाद की उसके अपने मतलब की एक विचार पैदाइश बात है, मूढता तो है ही, वर्णाश्रम उच्च-नीच सामाजिकता के लांछन में होना भी है।

गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 208

आफू षाय भांगि भसकावै, ता मैं अकलि कहां तैं आवै।

चढ़ता पित्त उतरतां बाई, तातै गोरष भांगि न षाई।

Taking opium, drinking bhang,

what's the sense in that?

Passions arise, prana is weakened,

so Gorakh does not drink bhang. (208)



हिंदू वा हिंदूत्व

हिंदू वा हिंदूत्व यह कोई धरम नहीं है, धरमनाम परंपरा नहीं है ऐसे कह सकते हैं। मतलब, हिंदूत्व के नाम प्रोपागंडा प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष चलने वाली वर्णाश्रम उच्च-नीच सामाजिकता के लिए है, जो वैदिकता वा मनुवाद है, नकली सनातन है, सो इनका राष्ट्रवाद है। यह लोक-परलोक आस कालांधता के साथ धर्माधिकारीता का ढोंग व राजभोग का जुगाड़ है। वर्णाश्रम उच्च-नीच सामाजिकता किसी भी रूप में होय मानवीय गरिमा की समझ से रहित है, किसान कामगार आदि को अशिक्षित व कमजोर रख चूसते रहने की नीयत से है।

किसी भी आदमी की शिक्षा (कुछ प्राथमिक छोड़), व्यवसाय, धरमनाम परंपरा आदि निर्देशित या निश्चित करने का अधिकार, जन्म, जाति वा धर्म आदि के नाम पर, माता-पिता सहित किसी दूसरे आदमी या कोई बाँडी या लॉबी के पास होना सामाजिक फ्लॉ है, फ्रॉड है। अपने स्वभाव, शिक्षा, व्यावसाय आदि में, और कोई चाहे तो धरमनाम परंपरा में भी, देख समझकर बदल करने की बात हर आदमी की अंदरूनी स्वतंत्रता है। अर्थात्, हमारी आंखें देखती है व कान सुनते है, ऐसा नहीं कि किसी की आंखें सुनती व कान देखते हो, और यह दीन-धरम की सनातनता है, भले कोई कल्पना में कुछ भी टल्ल मारे।

धरम के नाम पर कोई वैदिक आदि लोक-परलोक आस कालांध परंपरा सनातन धरम नहीं होती, भले वह वैसी बातें करे। धरम का अपना महान अस्तित्व है जो सार्वजनीन, सार्वभौम, सनातन है। Well, सनातन, भगवान जैसे शब्द बुद्ध के गढे व व्याख्यायित किये हुए हैं, जो वैदिक परंपरा वाले एक प्रकार से हाइजैक कर इस्तेमाल किये जा रहे हैं।

"... एस धम्मो सनंतनो।"

भग्ग रागो भग्ग दोसो भग्ग मोहो अनासवो,

भग्गस्स पापका धम्मा भग्गवा तेन उच्चति।।

— भगवान बुद्ध।

साधू अर सज्जन की जात, वर्ण, धरमनाम परंपरा नहीं होती। समझ स्त्री वा पुरुष नहीं होती — समझ का लिंग नहीं होता। तथा समझ खुले

जेहन में खुलती हैं, किसमें कब कहां कैसी खुले कुदरतन अनिश्चित है। मगर ये धर्मांध इसे समझने के लिए खुले जेहन से नहीं है, तथा आम जन व स्त्रीयों को शुद्र मानते हुए मुंह से बदबू छोड़ने में शरम नहीं करते।

क्या है हिंदू धर्म? हिंदू का राग आलापते ये कब तथाकथित हिंदू व कब वर्णाश्रम सामाजिकता वाले हो जाए कह नहीं सकते, इन्हें धार्मिक नक्सली कह सकते हैं। धर्मनाम गुलामी की कैटेगरी है हिंदूत्व। जो समझ जाय वह इससे मुक्त है।

भगवद् गीता भी षडयंत्रकारी है, जो वर्णाश्रम सामाजिकता का समर्थन करते हुए स्त्री शुद्रादि को सीधे पाप योनी कहती है; और धर्म के नाम पर हत्या, युद्ध का समर्थन करते हुए विचार पैदाइश रास्तों का मसाला परोसती है। ऐसी किताब को सिर में लेकर ढोना यह चैतसिक मैला ढोने की बात है, जो यहां जन जन को समझना जरूरी है। वेदों को लिखा ही ऐसे हैं कि एक वाक्य के अनेक अर्थ हो, और इनमें तथाकथित रूप से सायन्स, गणित सब होने की बतियाई, उपर से झूठ का तुरा कि वेद इश्वरीय है। वेदों का इश्वर ऐसे दुई जुबान वालों की पैदाइश है। कोई समाज धूरीन सीधे कहता हैं कि, ये जिनको पवित्र (संस्कृत) किताबें बताया जाता है, उनमें सोची समझी सियासी जालसाज़ी है, इन किताबों की बनावट विभाजनकारी है, और इनका मक़सद धोखाधड़ी है —

What goes by the name of Sacred Books contains fabrications which are political in their motive, partisan in their composition and fraudulent in their purpose.

सत के कुछ स्पार्क तो कुरान, पुरान, वेद, बाइबल आदि कहीं भी मिल जायेंगे, मगर इसका मतलब यह नहीं कि ये सम्यक धरम देषी भी है। वैदिक हो या कुरानिक आदि, धरम के नाम पर किसी के झांसे में आम जनों का आना सामाजिक मूढता है। हिंदूनाम वैदिक व इस्लाम ये दोनों किताबी अधिकारिकता से धर्मांध है, भले इस्लाम में मानवीय गरिमा का महत्व वैदिक ब्राह्मणवाद से कुछ ज्यादा है। इन दोनों से आज की इसाईयत बेहतर है, क्योंकि जिजस प्रेम है, पर किताबी अधिकारिकता समाप्त है। बोधि धरम अलख संग्यान सूं है, सनातन, सार्वभौम जीवन दरसन है, मानवीय गरिमा सूं समता बंधुता के साथ बहुजन हिताय सुखाय है।

हिंदूनाम वर्णाश्रमवाद की समाप्ति होनी है, देखना है कि यह बोधि धरम का अलख जगने से सम्यक रूप से होती है या किसी और तरह से।

हिंदू ध्यावे देहुरा, मुसलमान मसीत।

जोगी ध्यावे परमपद, जहां देहुरा न मसीत।।

हिंदू ध्यावे राम कूं, मुसलमान खुदाय।

जोगी ध्यावे अलख कूं, कहै कौन पतियाया।।

— गोरख, सबदी 68, 69.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 271

रहता हमारै गुरु बोलिये, हम रहता का चेला ।
मन मानै तौ संगि फिरै, नहितर फिरै अकेला ॥

He lives life, he is my guru,
I live as his disciple.
If the mind agrees, roam together,
otherwise go off alone. (271)

धरम की सारी बात में चैतसिक अधिकारिता व अवलंबन की जगह नहीं है। समझदार मानुस यह देखने के लिए खुला होता है कि, वह कहाँ गुरु है, और कहाँ चेला। सिद्धों में यह बात प्रसिद्ध है : गुरु की करणी गुरु जायेगा, चेले की करणी चेला। गोरख एक मित्रवत गाइड है। नाथ सिद्ध व बुद्ध एक ही चेतना है।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।

अत्तना हि सुदंतेन, नाथं लभति दुल्लभं॥ — बुद्ध।

धरम के नाम पर किसी भी बात में विश्वास ना करे, चाहे जहाँ कहीं भी आपने उसे पढा है या किसीने भी कहा है, बुद्ध, गोरख या किसी अन्य ने कहा है तो भी नहीं, जब तक वह आपकी सुझ-बूझ व कॉमन सेंस के साथ मेल से नहीं है।

अत्त दीपो भव! — बुद्ध।

There is no place for psychological authority and dependency in all this. A wise person is open to seeing where he is a guru, and where a disciple is, or where he himself is a disciple. There is a *siddhas'* saying common among Nath *sādhus* which goes: *guru kī karaṇī guru jāyegā, cele kī karaṇī celā* "A guru is known by his deeds, and a disciple is known by his". Gorakh is a friendly guide, Nāth *siddhas* and *Buddhas* are one in spirit.

attā hi attano nātho, attā hi attano gati
attā hi attano nātho, ko hi nātho paro siyā
attanā hi sudantena, nātham labhati dullabham.

You really are your own master
You are responsible for where you are going
You really are your own master
Who else could be your master?
Work hard on yourself,
and find the mastery so hard to find.

– Buddha.

In religious matters, believe nothing, no matter where you read it or who has said it, not even if Buddha, Gorakh or anyone else has said it, unless it agrees with your own reason and common sense.

Atta dīpo bhava! – Buddha.
Be a light unto yourself!



देह के तुकाराम

तुकाराम की दुहाई देने वाले महाराज लोग सत संग्यान के प्रति चेतन है, सम्यक रूप से चेतन है, ऐसे नहीं कहा जा सकता, जो एक विडंबना है। ये तुकाराम महाराज को मनमुखी अफलातून बातों में रंगाकर, कॉमन सेंस के परे, धरमनाम भरम चला रहे हैं यह देखने समझने की बात है।

तुकाराम, जो निरवाणिक पुरुष है, किसी गरूड की पीठ पर बैठकर हमेशा के लिए सदेह वैकुण्ठ गये, इस बात पर किसी भी तरह से विश्वास करनेवाले या ऐसा बतानेवाले, भले वह वारकरी, मोरे या कोई पंडित है, ये या तो मूढ़ है या कुटिल — जो मूलतः अग्यान अर दुख गामिता है। इसमें, चैतसिकता में, कॉमन सेंस नहीं है; और कॉमन सेंस के परे कोई सेंस नहीं होती। मतलब, वैकुण्ठ गमन वाली बात सीरे से खारिज है। बाकी तुकाराम महाराज की हत्या हुई, या किस कारण शारीरिक रूप से गायब हो गये या कर दिये गये, यह अनुसंधान की या समझ की बात है।

कहानी बनाकर तुकाराम के मुंह में या मन में किसी बाबाजी ने रामकृष्णहरी रख दिया, बता दिया, वह भी सपने में, और उस मनमुखी बात के साथ खोजी तुकाराम जिंदगी भर उलझते रहे यह सब समझ की बातें नहीं है। आगे, भगत लोग रामकृष्णहरी की खुशामद से खुदा को खुश करने की कवायत में व्यस्त या मस्त देखे जा सकते हैं।

... ये नये ग्यानी भगत घने बिगूता।

... These strange scholars and bhaktas are much fouled.

— गोरख, सबदी 310.

साफ है कि विचार पैदाइश राम, कृष्ण आदि तथाकथित बहुजन पात्र है, जिनके मुंह में वर्णाश्रमवाद उच्च-नीच सामाजिकता की बातें भरी हुई हैं; और इन बातों को ना समझकर रामकृष्णहरी आदि में उलझने वाले बाबा या महाराज लोग भ्रमित हैं, समता बंधुता के साथ "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" इस वारकरी मूल को सही से समझते नहीं हैं, सो ये धार्मिक व सामाजिक भलाई में सहयोगी होने के बजाय बाधक बनते हैं।

जे का रंजले गांजले । त्यासि म्हणे जो आपुले ।

तोची साधू ओळखावा ॥ देव तेथे चि जाणावा ॥

— तुकाराम

आगे यह भी जाने कि, "वेदां चा तो अर्थ आम्हासी च ठावा।" ऐसा तथाकथित वचन तुकाराम के मुंह में डालकर एक प्रकार से तुकाराम द्वारा वेदों का महिमा बखान कराने की चालाकी वा कुटिलता करनेवाला कोई वैदिक पंडित हो सकता हैं, तुकाराम नहीं। ऐसे ही ज्ञानेश्वर आदि को लेकर तुकाराम की अभंग बानी में कितना प्रदुषण है यह देखने समझने की बात है। तथाकथित रूप से इश्वर को पूजनेवाला तुकाराम इश्वरनाम सारी संकल्पनाओं को फेंक देने वाला भी है यह जाने। सो तुकाराम बिना पढ़े ये कहे कि, "वेदां चा तो अर्थ आम्हासी च ठावा...", यह तुकाराम की बानी में साफ एक प्रक्षेपित बात है। और यह भी जाने कि, इनके तथाकथित इश्वरीय वेद आम जनों को तो पढ़ने की अनुमति

भी नहीं थी उस समय, तुकाराम को भी नहीं थी। दुसरे शब्दों में, तुकाराम की अभंग गाथा में असल में कितने तुकाराम के अभंग हैं, और कितने X Y के घुसाएं चलाएं हैं, यह समझने जानने की जिम्मेदारी वाचकों की अपनी खुद की है।

जगतगुरु मन ही मन देख।

— गोरख, सबदी 276.

वारकरी पंथ के बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकंपाय इस मूल संग्यान को देखते हुए साफ दिखाई देता है कि, "मंगलं मंगलं, भवतु सब्ब मंगलं!" यही इनका मंगलाचरण है, होना चाहिए। साफ है कि वर्णाश्रम उच्च-नीच सामाजिकता पुरस्कारी "रामकृष्णहरी" यह मंगलाचरण वा वचन वारकरी पंथ में एक घुसाई व गैर रूप से चलाई जा रही बात है।

यहां ज्ञानेश्वर की कुछ बात देखना सुसंगत है, सो कुछ मर्म की बात : वर्णाश्रम-ब्राम्हणवाद के एक एजेंट के रूप में, ज्ञानेश्वर व ज्ञानेश्वरी के रूप में, उच्च-नीचता, विचार पैदाइश रास्ते, युद्ध, हत्या का समर्थन, पाप-पुण्य योनी आदि धर्मनाम गंदगी चलाने वाली गीता को वैदिक तत्वों ने बहुत पहले वारकरी पंथ व आम मराठी जनों में चालाकी से interpolate किया है; और मूढ़, भ्रमित जन इसे ना पकड़कर, धर्म वा अध्यात्म के नाम पर, अन्यथा बोझ सर पर ढोते चलते हैं, जो दुख है। इन तथाकथित धार्मिक बातों को समझ के साथ साइड करने से ऐसी बातों की सामाजिक शक्ति समाप्त होने में देर नहीं लगती। संत ज्ञानेश्वर ने गोरख व नाथ पंथ को मॅनेज करने की नीयत से "आदिनाथ गुरु सकळ

सिद्धांचा, मत्स्येंद्र तयाचा मुख्य शिष्य..." ऐसी मनमुखी, झूठमूठ रचना भी लिखी है। सत धरम पथ, ध्यान ग्यान गुदडी, यह खोजी स्त्री पुरुष जगाते चलाते हैं — गुदडी जुग जुग तै आई, गुदडी सिध साधिका चलाई।

तुकाराम में थोड़ा झांककर देखने से ऐसा नहीं लगता कि जीवन की मौलिक खोज में तुकाराम मनमुखी कल्पना पात्रों में उलझकर रहने वाले व्यक्ति थे। सावता महाराज, गाडगे बाबा आदि ने विट्ठल का कभी मुंह नहीं देखा यह जन जन जाने जरूरी है। खुले मन से खोज करनेवालों के लिए सत सहज होता है, ऐसे आदमी एक कानी आंख कहीं और फसाएं रखनेवाले धर्मांध पंडितों या कठमुल्लाओं के जाल में नहीं फंसते, तथा किसी परंपरा की छाया लेकर तैयार हुए, व आत्महत्या तक की अति करनेवाले, मनोविकृत संतों में नहीं उलझते।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 72

गोरख कहै सुणहुरे अवधू, जग में ऐसैं रहणां ।

आंषै देषिबा कानैं सुणिबा, मुष थैं कळू न कहणां ॥

Gorakh says, listen Avadhu,
live in the world like this.
Eyes open, ears open,
keep your mouth shut. (72)



आळंदी के ज्ञानेश्वर

ज्ञानेश्वर का इतिहास महाराष्ट्र में लोगों के जुबान व लोक साहित्य में है; और अध्यात्म सहित उनके जीवन की सच्चाईयां इसमें साफ है।

ज्ञानेश्वर संत थे या नहीं इसे अलग रखते हुए सीधे यह कह सकते हैं कि, वह किताबी आसक्ति से थे, ब्राह्मणवाद में लिप्त थे, जैसे उनके पिता थे। इसी आसक्ति में वह सब भटकते रहे — निवृत्ति, ज्ञानेश्वर, सोपान इनकी ब्राह्मण व वर्णाश्रम जनेऊ मान्यता के लिए उलझते रहे — क्योंकि उन्हें शुद्ध होने का डर था। सीधे शब्दों में कहे, उनमें मानुस बनने की धमक या सत संवेग नहीं था। सो उनके पिता विट्ठलपंत ने मूढतावश अपनी पत्नी (चार बच्चों की माँ) को साथ लेकर, धर्माज्ञा वा प्रायश्चित के नाम, नदी में डूब आत्महत्या कियी। आगे कुछ अलग तरह से, उसी परंपरासक्ति में, ज्ञानेश्वर ने धरम के नाम पर गीता, भक्ति-मुक्ति, अहं ब्रह्म वा शिवोहम् का self styled mission पुरा कर, जमीन में समाधि के नाम खुद को जिंदा समाकर, तरुण उम्र में आत्महत्या कियी।

इस सब में वह जीवन की मौलिक खोज में नहीं, बल्कि ब्राह्मणवाद में फंसे रहे, व उसी में समा गये। गीता पर उन्होंने ज्ञानेश्वरी लिखी। पर देखे, जो विचार पैदाइश रास्ते बताये, हिंसा, हत्या, युद्ध का समर्थन करे, कर्म सिद्धांत की समझ नहीं अरु कर्मण्येवाधिकारस्ते कहे, वर्णाश्रमवाद, उच्च-निचता, पाप-पुण्य योनी आदि के साथ मानव में मन बुद्धि-भ्रम करे, ये गीता धार्मिक ग्रंथ हो सकता है? कॉमन सेंस से समझने

की बात है कि गीता सम्यक धार्मिक किताब नहीं है। सो गीता, ज्ञानेश्वरी पारायणादि में जनों का लिप्त होना मूढता है, दुख है।

बुद्धिबल से, आत्मा-परमात्मादि कल्पनाओं के मध्यनजर, कहना कि, आता विश्वात्मके देवे, हे विश्व ची माझे घर, वा दिखाने के दांत वसुधैव कुटुम्बकम्, व खाने के दांत वर्णाश्रम कुटुम्बकम्, यह सब हवाई गुबार है, सत नहीं। हमारे लिए सत महत्वपूर्ण होय, हवाई बातें साइड होय। किसी को तकलीफ़ हुई है, तो उस बाबत सहानुभूति एक समझ है; पर उनकी धरमनाम अंधता में बह जाना मूढता है। ज्ञानेश्वर किसी विश्वात्मक देव से पसायदान या प्रसाद के रूप में जनों में स्वधर्म का जगना (धर्म अस्तित्वगत है, स्वधर्म या परधर्म ऐसे नहीं होता), कल्पित कल्पतरु या चिंतित चिंतामणी का मेल व सो इश्वरनिष्ठ होना, आदिपुरुष की भक्ति-भजन करना, वाग्यज्ञ या होम-हवन की वकालत (त्याग-तप वा जत-सत सूं जीवन दरसण नहीं) आदि बाते करते हैं, जो धरम वा अध्यात्म के नाम पर मनमुखी व अहंतोषी है, काल दुख अग्यान धरमी है।

ज्ञानेश्वर यह नामदेव के साथ उत्तर भारत की यात्रा पर गए ऐसी बतावन भी है। मगर सिख ग्रंथ में ज्ञानेश्वर का कुछ नहीं, नामदेव के 60 से ज्यादा अभंग है ग्रंथ साहिब में। समझते हो? महाराष्ट्र का वारकरी पंथ "नामदेवे रचिला पाया, तुका झालासे कळस" ऐसे है; और इसमें ज्ञानेश्वर एक परजीवी की तरह है, जिन्हें कुछ तत्व उठाते रहते है।

मेंढक भी गर्मियों में कई महीनों के लिए बिल में ना खाते पीते कुदरतन जैसे भी समाधि लिए बैठते हैं — मरण के लिए नहीं! यही बात आदमी चेतनता से, consciously, थोड़े समय के लिए भी साधे बड़ी बात है।

ज्ञानेश्वर ने परंपरासक्ति में, अपने कल्पना विलास से, "आदिनाथ गुरु सकळ सिद्धांचा, मत्स्येंद्र तयांचा मुख्य शिष्य..." ऐसी मनगढ़ंत रचना कर गोरखनाथ के नाथ/सिद्ध पंथ को मॅनेज करने की कुटिलता भी कियी। खुले मन से देखने वालों के लिए सत रोशनी की तरह साफ होता है। अस्तित्व प्रवाह में कोई आदि वा अंतिम नाथ/गुरु/योगी नहीं होता, जो समझना काँमन सेंस की बात है। Cf. सबदी 173.

गोरखनाथ सीधे कहते हैं :

सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता, अनंत सिधां की बांनीं... (१०७),
गुदडी जुग जुग तै आयी, गुदडी सिध साधिका चला... (१९७)

... ये नये ग्यानी भगत घणे बिगुता॥ (310)

देखे कि अस्तित्व प्रवाह में कोई आदि वा अंतिम नाथ/गुरु/योगी नहीं होता, जो समझना काँमन सेंस की बात है। भौतिक या शारीरिक रूप में, हर वस्तु या जीव की, भले वह पेड़ पौधे हैं या ग्रह तारे, मनुष्य है या अन्य जीव, इनकी कोई शुरुआत, कुछ जीवनकाल व अंत होता है। तथापि, चैतसिकतः, चेतन जीवों में, चेतना की कोई विशिष्ट शुरुआत है ऐसा नहीं होता। हमारी चेतना, जो गहराई में सामुहिक प्रवाह है, व्यक्तिशः अलग नहीं है, यह दैनंदिन जीवन व मृत्यु में, अनेकानेक जीवों में, ज्वार भाटे की तरह भीतर बाहर होते अनंत काल गति है, जिसकी

कोई शुरुआत नहीं; और यदि हमारे भीतर से, ध्यान की अगति में चित्त अवधून्न होते, इसका अंत नहीं होता है, तो यह ऐसे अनंत भव में चलती जाना लाजमी है। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है, जिससे आदि व अंतिम, हिरण्यगर्भ वा आदिनाथ, लास्ट डे, कयामत, अवतार, भक्तियोग, राजयोग आदि मत-मान्यताओं की व्यर्थता देखी जाती है, यह जंजाल मन से समाप्त होता है।

जिद्दू कृष्णमूर्ति कहते हैं — दुनियाभर के जादातर संत, जो किसी किताबी धरमनाम परंपराओं की छाया में संत बनते हैं, दुर्दैव से, संत होते हुए भी कमोबेश मनोरुग्ण रहते हैं।

गोरखनाथ हमारी काँमन सेंस को आगाह करते हुए कहते हैं —

"कछु मगज भीतरी ख्याल रे।

Dear, isn't there some sense in your brain!"



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 118

लोहा पीर, तांबा तकबीर। रूपा महंमद, सोना षुदाई ।
दुहुँ बिचि दुनियां गोता षाई ।
हम तो निरालंब बैठे देखत रहैं, ऐसा एक सुषन बाबा
रतनहाजी कहै ॥

The pir is iron, praises are copper,
Muhammad is silver, God is gold.
The world is sinking between the two.
As for me, I am seated unattached, watching.
So says Baba Ratan Haji. (118)

GB लाइन 1 में ॐ है, जैसे "ॐ लोहा पीर..." तथापि, बडथ्वाल ने दर्शाए हस्तलिखितों में से (ख), (ग), (घ) इन तीनों में ॐ नहीं है, GG#100 में नहीं है, अन्य GB सबदी में नहीं है; GB#110 में नकारात्मक अर्थ में बस एक बार "ओअंकार" आता है। स्पष्ट है कि, इस सबदी में ॐ की कोई जगह नहीं है; यह एक प्रदुषण के रूप में मिलाया हुआ साफ दिखता है। सो ॐ को निकाला गया है।

किसी भी मंत्र, शब्द उच्चारण में दो बातें होती हैं : 1. मान्यताओं की बातें, 2. इससे भीतर जो भी तरंग पैदा होते हैं, और धरम अर ध्यान के नाम पर ऐसी कोई मान्यता वा कृत तरंग यथाभूत सत दरसन में, आसति दरसन में, रुकावट होते हैं।

नाद, वेदनां, तरंग यह एक ही बात के अलग आयाम है, और इनको मूलतः अलग नहीं किया जा सकता। संपूर्ण नाम-रूप जगत यह विभिन्न व अनेकानेक तरंगों की अपने आप में संतुलित गति है, इसमें कोई भी एक ध्वनि या तरंग आधार रूप में नहीं होता। शुन्यता कुछ नहीं! यह समझे कि, ॐ, अं, अमीन, ह्रिं, हूं इत्यादि शब्द, जिन्हें कोई परंपराएं महत्वपूर्ण मानती है, यह केवल विचार की पैदाइश बातें हैं, तथा विचार के परे इनकी कोई सत्यता नहीं होती। विचार से मुक्तता है ध्यान!

GB line 1 has *Om*, as in *Om lohā pīra...*, whereas in three of the mss consulted by Barthwal there is no *Om*, nor is it in GG#100. *Om* is not used in any other sabadi, except once in GB#110, where *Oamkāra* occurs in a negative sense. Apparently, there is no place for *Om* in this sabadi. It looks like an interpolation, so *Om* is omitted here.

Any mantra contains two things: 1. its ideological sense, 2. the vibrations it creates within, and these hinder the observation of “what is” (*asti* or *āsati*).

Sabada means sound, or rather sounds – sounds, sensations, vibrations are inseparable. The whole field of name and form is the ordered movement of many and varying vibrations. There is no one particular sound or vibration as a base. This is very important to understand. Silence is nothing! Understand that words like *Om*, *Amin*, *aim*, *hrīm*, *hūm* etc., described as something special, are merely products or inventions of thought. Meditation is free of thought!



ओम - एक अन्यथा घुसपैठ

किसी आसन-कुंभक योगिक व्यायाम या अन्य शारिरिक व्यायाम के बाद, या ध्यान में, ओम (ॐ) आदि उच्चारण (Chanting) करना यह बिल्कुल मेल से नहीं है। ओम सहित किसी भी शब्द के अपने तरंग होते हैं, मान्यता हो सकती है, जो सम्यक ध्यान व सत धरम समझ में बाधक होते हैं। ऐसे किसी भी उच्चारण के बजाय, संवेदनशील मन के साथ, जीवन प्रवाह जैसा "है" उसके साथ एकसंध होय अलख संग्यान सूं भाव-पवनां को स्थिरता से सहज, कुशल पूर्वक, जानते रहे यही ध्यान है, जिसमें चित्त अवधूतन के साथ हल्कापन व प्रसादन होता है।

साफ है कि, योगिक आदि व्यायाम समय के बजाय अन्य समय में आप कोई चान्टिंग, गायन, संगीत का रस ले और बात है। कोई कहता है इसलिए चान्टिंग करना या ना करना समझ नहीं। धरम आदि के नाम पर अपना मसाला बेचने वालों की यहां कमी नहीं है। शरीर व मन क्या कहता है यह महसूस कर सीखना होता है। सो दरसण-ध्यान ही खोज है, सीख है।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi – 115

सिध का संकेत बूझिलै सूरा, गगन अस्थानि बाइलै तूरा ।

मीमा के मारग रोपीलै भाणं, उलट्या फूल कली मैं आणं ॥

Heroes recognize the sign of a siddha –
the trumpet blows in the inner firmament.
Cultivate awareness on the way of truth,
the upside down blossom turns into a bud. (115)

GB लाइन 2, "मीमा" यह शब्द सूफी मूल से है, मतलब, अरबी "मीम" से है। सो अरबी से इस सबदी के संबंध में दो संदर्भ है।

1. मोमिन यह शब्द मीम से है, जिसका मतलब है वास्तविक, भौतिक, सत जैसे है वैसे, सांसारिक, किसी भी तरह से काल्पनिक नहीं। सो मोमिन वह स्त्री वा पुरुष है जो अहं, धरम वा इश्वर के नाम पर किसी कल्पना में नहीं होने की चैतसिक ताकत से रहती/ता है। तथापि, अरबी में किसी तरह से मोमिन यह शब्द कुरानिक, इस्लामिक मान्यताओं में विश्वास करनेवाला ऐसे उलटफेर से हो गया है, जैसे तथाकथित हिंदू या वैदिक परंपरा में अस्ति, आस्तिक, नास्तिक, सनातन आदि शब्दों के साथ हो गया है।

2. "अहद" यह खुदा या रहस्य का निर्देश करता है; और "मीम" के साथ "अहमद" यह शब्द एक जीव, मानुस, दुनियादारी, संसार की तथ्यता, भौतिक सत का निर्देश करता है।

सो इस सबदी में मीमा यह शब्द, मतलब मीम, वास्तविकता, भौतिक सत, वेदनां-भावनां, जो "है" का निर्देश करता है।

विचार करना, विचार गामि होना, यह चित्त का काल, भव में विस्तारणा है; और ध्यान यह काल गति का रुकना है, अजानता में आना है, कली होना है — "उलट्या फूल कली में आंण।"

ध्यान यह बोधि का जगना है, जिसमें चित्त की निर्जरा होती है। ध्यान मीठा मरण है!

The word *mīmā* in line 2 is of Sufi origin, from the Arabic *mīm*. In Arabic it has two connotations in relation to this sabadi.

1. The word *momin* is from *mīm*, which means physical reality, truth as it is, worldliness, not in any way imaginary. Thus, a *momin* is he or she who lives with the strength of avoiding imagination in the name of the self, religion or God. However, the word *momin* has in the Islamic world come to refer to a believer of *Quranic* and Islamic faith, in the same way as *asti*, *āstik*, *nāstik*, *sanātan* etc. have come to be used in the Hindu or *Vedic* traditions.

2. *Ahad* refers to God or to mystery; and with *mīm*, the word *ahamad* refers to a being, a human, worldliness, the actuality of *samsāra*.

Thus, in this sabadi the word *mīmā*, i.e. *mīm*, refers to actuality, physical reality, feelings and sensations, to “what is”.

Thinking is process, the flowering of our consciousness in time, becoming, whereas to live by attention is to stop the time process, to come to innocence, to be a bud. Attention is the awakening of divine fire, in which there is the ending of our consciousness. Attention is sweet dying!



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 280

मन वैरागी धूधूकार, पेट वैरागी कांधे भार ।

ग्यान वैरागी त्रिभवन सार, अतीत वैरागी उत्तरै पार ॥

A bairagi in thought is in the dark
A bairagi in the belly is a load on others
A bairagi with wisdom is the heart of the three worlds
A bairagi who lives out of time passes beyond. (280)

This is GG#181.

Cf. गोरख-बानी, पद, *Gorakh-Bānī*, Pada 8/38:

पंच तत्त की काया विनसी। राषि न सक्या कोई ।

काल दवन जब ग्यांन प्रकास्या। बंदंत गोरष सोई ॥

The body of the five elements is perishable,
nobody can keep it forever.

Time is burned with the light of knowledge,
that's all Gorakh is saying. (Pada 8/38)



सतसंग और शास्त्रार्थ

सतसंग : अस्ति सत जीना सतसंग है। सो जीवन जीना, ध्यान करना, वा सत की आपसी बातचीत (dialogue), यह सब मूलतः एक ही है। इसमें मूलभूत बात यह है कि, कोई भी किताब वा व्यक्ति इसमें अधिकारिक नहीं होता। जैसे गोरख सबदी, बुद्ध बानी, जिद्दू कथन and so on, तथा हमारी यह बात।

शास्त्रार्थ : इसमें धरम के नाम पर कोई किताबें तथा व्यक्ति अधिकारिक मान कर उनमें बतायी बातों का उहापोह होता है; जैसे वैदिक, कुराणिक and so on में होता है। इसमें सत के लिए बात ना होकर सत के नाम पर बात होती है, debate होता है।

पंडित, मौलवी शास्त्रार्थ करते हैं। साधू, सज्जन सतसंग करते हैं। अर्थात्, बहके साधू वा महाराज तथा भ्रमित जन सतसंग के बजाय शास्त्रार्थ पर उतर आये तो आश्चर्य नहीं।

“मेरे यार को प्यास लगी,

पेश आब मैंने कर दिया।” — फारसी कवि।

पेश आब > पानी देना : सतसंग।

पेश आब > पेशाब करना : शास्त्रार्थ।

"बडे बडे कूले मोटे मोटे पेट..."

"Big fat arse, pot belly..." — गोरख, सबदी 109

बडे बडे कूले > कूल्हे = बडी कमर, big fat arse: सतसंग।

बडे बडे कूले > कुले = बडा कुल-गोत्र, big lineage: शास्त्रार्थ।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 103

संन्यासी सोई करै सर्व नास, गगन मंडल महि मांडै आस ।

अनहद सूं मन उनमन रहै, सो संन्यासी अगम की कहै ॥

A sannyasi gives up everything,
his hope flourishes in the inner firmament,
hearing the boundless sound,
his mind absorbed in the unmana,
the sannyasi speaks of the unattainable. (103)

“Now desire, contrary to general belief, is the most precious possession of man. It is the eternal flame of life; it is life itself. When its nature and functions are not understood, however, it becomes cruel, tyrannical, bestial, stupid. Therefore your business is not to kill desire as most spiritual people in the world are trying to do, but to understand it. If you kill your

desire, you are like the withered branch of a lovely tree. Desire must keep growing and find out its true meaning through conflict and friction. Only by the continuance of the conflict can understanding come. This is what most people do not see. As soon as the conflict comes, and the sorrow born of conflict, they at once seek comfort. Comfort, in its turn, breeds fear. Fear leads to imitation and the sheltering behind established tradition. From this come rigid systems of morality, laying down what is spiritual and what is not spiritual, what is the religious life and what is not the religious life. It is the fear of life which produces guides, teachers, gurus, churches, religions.”

— Jiddu Krishnamurti,
pp. 191-2, 22 July 1930, Summer, Ommen.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 73

नाथ कहै तुम आपा राषौ, हठ करि बाद न करणां ।

यहु जुग है कांटे की बाड़ी, देषि देषि पग धरणां ॥

Nath says, hold yourself in check,

don't get into arguments.

The world is a field of thorns.

watch where you walk. (73)



भगवा (OCHRE)

भगवा (ochre) रंग को भारतभर में आज भी रंगारी व रंगों के व्यावसायिक "जोगीया" इस नाम से जानते हैं। जोगीया मतलब जोगीयों का रंग — गोरख के जोगीयों का रंग। गोरखपंथ के नाथ साधुओं को जोगी या योगी कहा जाता है, और सिद्ध भी कहा जाता है। तथा —

भग्ग रागो भग्ग दोसो भग्ग मोहो अनासवो।

भग्गस्स पापका धम्मा भगवा तेन उच्चति।।

— भगवान बुद्ध।

भग्ग (भंग) > भगवा > भगवान > भगवान बुद्ध, सिद्ध इति।

स्पष्ट है, भगवा सिद्धों-बुद्धों का अपनाया व चलाया रंग है, कि जो जिवंतता का, ध्यान से जीते पवित्रता का, प्रतीक है; व साधुओं के ड्रेस कोड में एक बात है। तथा जो भी इसे बाने के रूप में, या आंशिकतः, धारण करता है वह उस संग्यान से, समता बंधुता के साथ, ध्यान ग्यान सूं दया करुणा से जीने की कला की कोई बात है ऐसे कहा जा सकता है।

काल्पनिक हिंदूत्व के नाम पर, या जैसे भी, वैदिक आदि तत्वों का भगवा को हिंसक रंग के रूप में किसी तरह से प्रचारित करना विकृत वा उन्मादी है कहना चाहिए।



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 314

अलष संग्यानै उर्ध ओष्ठ मध्य बिंद धरंत, सह मुष मंडल सूं
भाव पवनां देषंत ।

द्रष्टा दृश्य भेदै भाई दरसण साधै, सूरजनाथ कहै सो सुंनि
कालांत निरवाण जीवै ॥

Observing with the alakh sense
the sensation at the centre of the upper lip,
and observing the flow of feelings in the face,
the observer and the observed are revealed,
brother, observation is achieved.
Surajnath says, thus emptiness is the ending of time,
it is to live nirvana. (314)



MEDITATION IS MOVEMENT IN SILENCE

Thinking about meditation is not meditation. Thought cannot remain with the present, thought cannot know “what is”. Thought is movement, the momentum of past and future through the present. It is the past modifying itself in the present and projecting itself into the future. In meditation, thought, which is past, meets the present, and dissolves. The past, i.e. mental impressions, is present in nearly everybody as a result of the coincidence of one’s deeds and karma, the universal law of reward and punishment, and this accumulation is sorrow. Further, we have the choice between remaining conditioned by some ideology or beliefs, which is thought conditioning, or becoming a free and well-balanced human being. It is what we do now that matters the most. If the past is not transformed in the flame of meditation, it is going to perpetuate itself. Either we can listen and read with a free, discriminating, fresh mind, or we can stay with the past, that is, with beliefs, ideologies, personal ideals, the dogmas of market-place religions etc. “Market-place religions” refers to those religions proposing formalised righteousness, compulsory do’s and don’t’s, those playing on popular religious sentiment and creating violent passions, and those proposing some kind of worship, prayers, idolatry, flattery, rituals and so on in the name of religious or spiritual work or, in other words, becoming religions (bhava dharmas), for thought itself is becoming. While reading through this book, the nature of religion and the many market-place religions will become clear—but above all, it is meditation that is capable of shattering every false thing that appears in the name of religion. Personal ideals in our day-to-day living

or our involvement with such matters as arts, politics, science, society and literature are fine when adhered to with a free and thoughtful mind, with righteousness, but personal ideals in the name of religion, God, are bound to be a deviation into something intellectual. Meditation is not a thing; it is nothing; it is silence or movement in silence. There is no other way to describe it. There can be communication but not communion if one is listening according to what is past, because it is the past that is operating, not the present. Similarly, we can observe steadily and continuously or we can become caught up in calculating, judging and measuring intellectually.

Thought is the transitory material process of the brain, which is a part of consciousness, and is therefore not capable of effecting order in or transformation of the contents of consciousness. The contents of a jug and the jug are different, but the contents of consciousness are themselves consciousness, and human consciousness has the ability steadily to observe itself, to observe the mental impressions that arise. Let us put it the other way around: the body is the replica of consciousness; and apart from the body, consciousness comprises thoughts, desires, feelings, sensations and awareness. When awareness is associated with thoughts and desires, when awareness becomes thoughts and desires, then we have the recording or filling in, the impression, of the related feelings and sensations; but when awareness is steadily aware of feelings or sensations, then we have the emptying of feelings and sensations, and in this there is such an unconditioned learning that the mind will no longer record those feelings and sensations once they are eliminated. To go on emptying is the way of intelligence, and in this we

have the gradual unconditioned irrevocable evolution of consciousness. Basically, there are only sensations and awareness, and they are related, both go together, there is no awareness apart from sensations.

Thought—thinking, reasoning, calculating, judging, weighing, contemplating, discriminating, analysing—is measure, it is the process of the intellect. Thought is intellect. Thought is subtle matter, or more correctly it is a process, an activity going on in matter, in the brain. Intellect is a kind of energy, a kind of intelligence that by nature is not capable of breaking and transforming mental impressions. Intelligence, that is attention, is a different kind of energy, it is the present, it is remaining with “what is”. It penetrates deep into the consciousness and works on psychological blocks and mental impressions. It releases the blockages in the capabilities of the intellect—thinking, imagining, judging and so on. The intellect can be developed in different fields, it can be free and critical, but that is not the emptying of sorrow. Intelligence can use the intellect, but the intellect cannot know or touch intelligence. Attention, which is steady awareness of “what is”, is altogether a different kind of action; it is causeless. It is intelligence that operates in attention. Attention can either be focused on something or it can remain steadily aware of both inner and outer events without focusing on them. Intelligence is nothing, emptiness, immense energy; it is beyond measure. It works independently of thought. However, thought works alongside intelligence in daily life, communicating, and being involved with food, shelter, arts, science and so on.

Simply listening to the sounds around us—the wind blowing, insects buzzing, traffic noise etc.—is meditation. Here too

there is attention towards “what is”. In listening, seeing, feeling, smelling, tasting etc. there is a balancing of in and out. Sometimes we may simply listen, or simply see the beauty of the sea, sky and nature around us attentively without naming or describing it. This does not mean that the meditating mind cannot describe nature; it can, but there is no need to chatter all the time. However, most meditation work should be in the consciousness itself, attending to feelings and the sensation at the centre of the upper lip. This does not mean that the mind will not wander into thoughts—it will, again and again, but the very awareness of non-attention is attention: the awareness of non-attention is the immediacy of attention. And when you are meditating seriously, when there is constant and regular immediacy of attention, the wandering habit of the mind undergoes a change. It does not matter how often your mind wanders away into thoughts. What matters is how serious you are in returning to attention, to meditation, and how diligently you observe your feelings and sensations – this is the important skill.

Attention has been likened to a steadily burning lamp casting its light around about itself. Attention can be focused on the face or the sensations in the body. However, the movement of the mind is tremendously fast, awareness can move very quickly, further, attention has an infinite capacity for perception. Attention is thus far more than a lamp. When we meditate we can achieve concentration but there is no avoiding of other perceptions such as sounds. It is very important to understand this because one can get the wrong idea about meditation. Simply speaking, meditation is attention to feelings or sensations. To meditate does not mean

neglecting our daily work. Attention will see and avoid or easily overcome mishaps or accidents, but a mind that is not attentive can easily become a victim to mishaps—or can even invite them. Life is movement in relationship and one must be sensitive and steady. Deceitful thinking can blunt sensitivity, free and unbiased thinking can enhance sensitivity, but nevertheless the energy of thought is by nature limited. We may change from unrighteousness to righteousness any time, or we may pretend to righteousness, quietness. Sensitivity sees this and meditation comes to remedy it; meditation is the key to open up, expose and dissolve every problem, every mental impression. Generally speaking, meditation is, as we have said, observation of “what is”, steady awareness of “what is”, but practically speaking meditation is observation, steady awareness of feelings or sensations. Observation of feelings implies observation of facial and bodily gestures and sensations—they are all one whole. We will also be aware of the words and pictures that arise in the mind but we should attach no importance to them.

The meditating mind knows that becoming entangled in thought intensifies pain and misery, for it involves the escaping, suppressing and avoiding of “what is”. This is transitory. And in just observing without any choice, i.e. without any desire or attraction or repulsion, there is a transformation of “what is”, i.e. transformation of the mental image. The flame of attention will heat and boil and dry up, break and uproot mental impressions. The meditating mind becomes aware that layer after layer of mental impressions, layers of feelings and sensations arise and wither. The flame of attention is not hot or cold, light or dark. It cannot be

described although it is perfectly simple; not the feeling of silence but silence itself cannot be described. Words can be used as a springboard for the jump to go beyond words and do the actual work of meditation. However, words, thoughts, thinking about meditation are not meditation. Quite simply, while meditating we should focus all our attention on our feelings in our facial expressions along with the sensation at the centre of the upper lip. Other sensations and tensions may arise in our head and other parts of our body. Remain with those tensions without strain, but continue giving your full attention to feelings in the face and to the sensation at the centre of the upper lip so that your meditation stays easy and natural. You will perceive the release of locked energy, i.e. mental impressions, as withering or breaking. The breaking is mostly experienced in our head, but sometimes in the neck or elsewhere. This does not mean we should hold parts of our body, such as arms or legs, in tense and uncomfortable positions. We should adjust our body when needed, understanding our body's wisdom.

Some thoughts in the form of words or pictures may continue to arise, such as hatred, anger and fear, but the meditating mind will find such thoughts start to lose their potency, until some day they will have lost it altogether, and are no longer burning inside. Many have said that to observe every thought that comes into the mind is meditation. To observe thoughts actually means to observe the feelings inherent in them. If you simply try to observe thoughts, the movement of words and pictures, there is the possibility of becoming caught up in them or of remaining shallow and superficial. There is no deep

penetration in simply observing thoughts, no natural flowering of meditation.

We all can easily observe feelings and sensations. Feelings are very clear in our facial changes and everybody is naturally sensitive to the face. Facial changes and expressions are feelings, the essence of sensations. Facial changes may be pleasing or painful, obvious or subtle, ugly or strange, they may change rapidly or slowly, but observe them and all else steadily. When meditating, the eyes should remain naturally and easily steady; however, there may be small movements of the eyeballs and eyelids even when the eyes are closed. “Facial changes” refers to changes of expression in the cheeks, lips, chin, nose, eyebrows, forehead and neck; and of course bodily gestures are also related to facial changes. Be as simple and open as a child and let your feelings flower, but do not be childlike by reacting with attraction or repulsion to them, whether openly or subtly. Nature has provided us with a point on the face that is clearly vibrating with some kind of sensation all the time. This point is in the centre of the upper lip. It may take a little time, some minutes, or even hours or days to awaken because of a lack of sensitivity or possibly because of a lack of the simplicity to know “what is”. Every thought, feeling and sensation in the brain, face and body is bound to change sooner or later, being impermanent, but the vibrating sensation in the upper lip goes on without change. Steady awareness of this sensation leads to the strengthening and deepening of mental steadiness, moving directly into the stream of the mind (because basically the stream of the mind is sensations), so even awareness of this sensation is meditation; then it will become easy and natural to observe

feelings. While observing feelings closely you may also be aware of this sensation, and sometimes not. Whenever you feel that the mind is running away all over the place, or you feel the need for mental steadiness, then simply and calmly observe this sensation and the associated feelings. To penetrate deeply into the mind is to observe our feelings. Thus, being aware of the sensation at the centre of the upper lip can be of practical help for shifting the attention to the face and its changes—it can be of help in the natural flowering of meditation. Putting it in other words, focusing on this vibrating sensation at the upper lip will help us to observe feelings and sensations steadily, and this can be done not only initially but at all times. The close and continuous observation of this sensation is itself meditation. And whenever you feel agitated or diverted, which themselves are kinds of feeling and should be emptied, when you find that these agitations or diversions are so powerful and distracting that you are not getting anywhere, and you feel such a need for smoothness in your meditation, then at these times give all your attention to this sensation at the upper lip, give little or no attention to feelings, and you will find that your meditation goes easily and smoothly; mental impressions will be being emptied and you will be achieving a breakthrough. We may need to meditate like this many times. The mind constantly wanders in thoughts, but this wandering away, or non-attention, and attention are not opposites of each other, they are fundamentally different. The very awareness of non-attention is attention. Further, you can even narrow down the area of awareness at the central part of the upper lip to a pin-point so that you observe a single minute atom vibrating there — arising and passing from moment to moment. This may lead

to a sharpening of sensitivity, in which your attention is not limited to this pin-point, but naturally extends to your face, head, body or nature around you more closely. This is not a matter of belief, it just has to be tried out. Feelings and sensations can be observed with the eyes open or closed, depending on your situation, for observation is a mental activity.

There are various ways of observing sensations, such as observing sensations as and where these occur, or observing the whole of the body point by point rapidly or slowly again and again, or some specific point, such as the centre of the upper lip, and then becoming aware of other sensations in the body and face as they arise. But for the easy and natural flowering of meditation the important thing is observation of feelings. Feelings are the essence of sensations, and as we observe our feelings we automatically and naturally become aware of various sensations in the body. And, needless to say, as feelings are emptied, the related sensations are also emptied automatically and naturally—for mind is “holomovement”, i.e. mind is all interrelated movement. Most of the time we do not need to focus on our body to observe sensations: we should simply remain aware of our feelings in our facial expressions and of the upper lip sensation and thus our meditation will go easily and naturally. The meditating mind experiences the uprooting of mental impressions, the emptying of the mind, in the arising and withering of feelings and sensations, and sometimes this may be experienced as tearing, cracking, bubbling, stroking, streaming, exploding sensations in the head, neck, stomach or other parts of the body. The meditating mind may sometimes experience things

such as flashing lights, bright spots, colours, sounds, dream-like ruined or grand buildings, saintly, angelic or divine beings, sometimes moving in space with or without conscious control, or various good or bad scenes related to fear, greed, envy etc. These are your own conscious or unconscious accumulations and reactions, i.e., recorded thoughts, feelings, sensations. At such times calmly observe the associated feelings and sensations. Meditation will come into your sleep and your dreams naturally when you are seriously mediating while awake, and also meditating while going to sleep. To do serious meditation is not some kind of mental burden—the work of meditation is arduous but simple. In sleep, the surface layers of the mind are comparatively silent, and so the deeper layers rise so as to bring order to the depths of the mind. The effort by thought to bring order to itself while awake or asleep is not true order—it may be a partial ordering, but the order that is achieved through meditation is unconditioned and irrevocable.

Insight into meditation has been a problem for most readers of Jiddu Krishnamurti, even with those who lived with him and listened to him in person. To understand and live Jiddu's religious teachings, which speak of right religious living, you may need to work over this, that is, work over the way of meditation presented here, and see the easy, sweet and natural beauty of meditation and life. This is not a boast, nor should you believe it; rather, examine it. Discover that “the observer is the observed”, and insight into this and going beyond involves not a thought or a concept, but moment to moment observation of “what is”—that is the reality of meditation work. In other words, observation reveals that the observer,

the ego and its reactions to all other feelings, of greed, envy, anger, fear, sympathy, care etc. It reveals that the observer is the observed, and this insight radically changes the very structure of your consciousness, and you then know what it is to live beyond the ego centre and thinking. You know what it is to live with the *alakh* sense, emptiness. The very observation of “what is” is emptiness, in other words, there is the awakening of sacredness.

— Insight into Meditation and Yoga, (chapter 2), 2022.



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 315

जानै दुख समुदय निरोध मगग, विघ्नाण संग्या वेदनां तृषण ।

अट्ट मगग तीन रतन, सिद्धत्थ बुध धरम भेदन ॥

द्रष्टा दृश्य आछै जिद्दू कथै, अलष विनाण गोरष सबदै ।

सूरजनाथ अरु अवधू षोजी, दरसण सुंनि निरवाण जीवै ॥

Know sorrow, arising, ceasing, the path,
cognition, recognition, sensations, desire;
the eightfold path, the three jewels,
Siddhartha Buddha, religious exploration.
The observer is the observed, says Jiddu.
The sayings of Gorakh, the *alakh* sense,
pure knowledge.

Surajnath and avadhus, seekers,
live observation, emptiness, nirvana. (315)



गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 284

जोग का मूल रे दया अर दान, वदंत गोरखनाथ ब्रह्म ग्यान ।
जब लग हिरदे दया न आई, जब लग कहिये सिद्ध कसाई ॥

Dear, the root of yoga is compassion and giving,
Gorakhnath declares the divine wisdom.
As long as the heart is not filled with compassion,
a siddha is like a butcher. (284)

This is GG#239.



जोग अवरण जोग अभेदं

गोरख सबदी Gorakh Sabadi - 313

जोग अवरण जोग अभेदं, जोग अषंडित जोग अछेद ।

जोग जति सति जोग दया, एहा ग्यान जति गोरष कह्या ॥

Yoga is not varna, yoga is not divided,
yoga is wholeness, yoga is flawless,
yoga is meditation, virtue, yoga is compassion,
this is wisdom, says Jati Gorakh. (313)

This is GG#335.

यह सबदी गोरखनाथ के शब्दों में योग का सार कथन है। योग यह वर्णाश्रम नहीं है; योग यह हठयोग, राजयोग शैव, वैष्णव, वैदिक, हिंदू, मुस्लिम, इसाई आदि विचार विभाजन नहीं है; मन की समग्रता है योग, सो योग परिशुद्ध है, जो विचार का इस्तेमाल कर सकती है परंतु विचार अपने आप में समग्रता नहीं; योग का ग्यान जत सत सूं दया-करुणा है!

This sabadi sums up the essence of yoga in Gorakhnath's words. Yoga is not varnāśrama; yoga is not divided into Haṭha Yoga, Rāja Yoga, Shaiv, Vaishnav, Vaidik, Hindu, Muslim, Christian and so on; yoga is wholeness of the mind, which can make use of thinking but not vice versa, and so yoga is

flawless; the wisdom of yoga is compassion arising from meditation and virtue!

॥ इति सिद्ध सतसंग ॥

Conclusion of the Siddha Satsang.

योगी सूरजनाथ, गुरु बुधनाथ जी,
पिंप्री गवळी, अहमदनगर, भारत।

Yogi Surajnath, guru Budhnath ji,
Pimpri Gawali, Ahmednagar, India.

2023

योगी सूरजनाथ — अल्प परिचय व आभार वचन

सूरजनाथ का जन्म एक सामान्य किसान परिवार में 1957 में रांजणगाव, पारनेर, जि. अहमदनगर, में हुआ। पैतृक गांव - रुई छत्रपति, पारनेर, जि. अहमदनगर, महाराष्ट्र। सूरजनाथ ने युनिवर्सिटी डिग्री पायी, और मिलिट्री सेवा देखी।

सूरजनाथ ने नाथ पंथ में दीक्षा नादी गुरु योगी बुधनाथ जी से त्रिंबक में पायी; कान चीरा दादा गुरु योगी बीजनाथ जी से 1992 में कामरगाव (घाट), अहमदनगर, में हुआ; पंथ सतनाथ। गुरु योगी बुधनाथ जी की समाधि - घोरवड, सिन्नर, जि. नाशिक; दादा गुरु योगी बीजनाथ जी की समाधि - चेरवली, मुरबाड, जि. ठाणे। योगी बीजनाथ जी के नादी गुरु पीर योगी गोपिनाथ जी, पेवा, हरियाणा, तथा पीर हांडी भडंग, कर्नाटक; और कान चीरा गुरु योगी शीलनाथ जी, चेरवली व मलमठ, मुरबाड, जि. ठाणे, महाराष्ट्र।

योगी सूरजनाथ व भगवान नाथ (इयन डंकन) पहली बार गोरखनाथ मठ, त्रिंबक, में 1990 में मिले। दोनों परंपरा, विश्वास, मान्यताओं के परे जीवन में मौलिक खोज के अपने चैतसिक, आंतरिक मिशन पर थे। खुले मन से खोज के लिए प्रोत्साहित करने में हम दोनों गुरु बुधनाथ जी व दादा गुरु बीजनाथ जी के आभारी हैं। वास्तव में यह दादा गुरु बीजनाथ जी थे जिन्होंने योगी सूरजनाथ में संभावनाओं को भांप लिया और माता

बबईबाई को सूरजनाथ को साथ देने का अनुरोध किया, जिससे सूरजनाथ को गंभीर साधना व संबंधित कार्य के लिए समय व एक मुक्त वातावरण मिले। सो हम गुरुओं के साथ, माता बबईबाई, गणपत बाबळे व उनके परिवार के आभारी है, जिन्होंने लंबे समय तक साथ सहयोग दिया व आने-जाने वाले साधू-सज्जनों की सेवा कियी। वैसे ही, लेस्ली डंकन ने भगवान नाथ के साथ मिलकर इस कार्य में इटली से व बाद में स्पेन से सहयोग किया।

योगी सूरजनाथ समय समय पर गोरख सबदीयों को सोशल मीडिया में पोस्ट करते रहे, सो अनेकों सम्मानित गुरु-पीर, योगी, महंत, साधू और आम जन इस कार्य से परिचित थे, और वह इस कार्य को प्रोत्साहित करते रहे। भेग भगवान में सम्मानित सिनिअर्स, महंत योगी सेवानाथ, महंत योगी किशननाथ, दोनों नाथ जमात के सेवारत प्रमुख, महंत योगी बालकनाथ, बाबा मस्तनाथ मठ, अस्थल बोहर, व महंत योगी आदित्यनाथ, गोरखनाथ मठ, गोरखपुर, तथा अनेकों अन्य ग्यात व अग्यात सिद्ध, अन्य पंथों के साधू व जन जन, गोरख सबदी की सत्यता, प्रामाणिकता व असीम महत्व समझकर, प्रत्यक्ष रूप से या सोशल मीडिया द्वारा, संपर्क में रहे, साथ देते रहे। पालि वचनों का भाषांतर भेजने के लिए हम भंते भिक्खु बोधि, युएसए, इनके आभारी हैं। सो सहयोग के लिए इन सबका सम्मान के साथ धन्यवाद है।

योगी सूरजनाथ गुरु बुधनाथ जी का मठ पिंप्री गवळी, पारनेर, जि. अहमदनगर, महाराष्ट्र, में है। इस गोरख सबदी कार्य में भगवान नाथ,

गुरु योगी सूरजनाथ जी, [भगवान नाथ (इयन डंकन), New Zealand, तथा अब Ibiza, Spain में], प्रथम चेला अर मित्र, इनकी संपूर्ण व बारिकी से साथ रही है। तथा अनेक साधू व प्रेमी जनों का इसमें सहयोग हुआ है।

गोरख — एक महायोगी, महासिद्ध!

“गोरख सबदी” काल गति में अनंत गोरख चेताने की सत क्षमता से है।

हम ध्यान अगनि चेतन रखे!

आगे आगे गोरख जागे!



YOGI SURAJNATH, A BRIEF BIOGRAPHY, AND ACKNOWLEDGEMENTS

Surajnath was born in Ranjangaon, Parner, Dist. Ahmednagar, Maharashtra in 1957, in an ordinary farming family. His parental village was Rui-Chhatrapati, Parner, Dist. Ahmednagar. He gained a university degree and saw military service. [His school name was Sitaram Bhagawant Wabale.]

Surajnath was initiated into the Nath *Panth* by *nāḍī* guru Yogi Budhnath ji in Trimbak; and received *kān-cīrā* from Dada guru Yogi Bijnath ji in 1992; *Panth Satnāth*. The *samadhi* of Yogi Budhnath ji is in Ghorwad, Dist. Nasik; the *samadhi* of Dada guru Yogi Bijnath ji is in Ceravali, Murbad, Dist. Thane. The *nāḍī* guru of Yogi Bijnath ji was Pir Yogi Gopinath ji, Pewa, Haryana, and Pir at Handi-Bhadang, Karnataka, and his *kān-cīrā* guru was Mahant Yogi Shilnath ji, Ceravali, Thane.

Yogi Surajnath and Bhagavan Nath (Ian Duncan) met in the ancient and famous Gorakhnath *Math* in Trimbak in 1990. We both were on our missions of enquiring into a life free from traditions, beliefs, ideas and ideologies. We are thankful to Guru Budhnath ji and Dada Guru Bijnath ji for their encouragement of open and sane minded seeking. Dada Guru Bijnath ji in fact sensed the potential and requested mother Babaibai to give full support to Yogi Surajnath so that he could have space and free time for *sāḍhanā* and related work. Thus we are greatly indebted and thankful to the gurus, to mother Babaibai, Ganapat Wabale and his family for directly supporting and serving us, and also to visiting *sāḍhus* and friends, throughout these many years. Further, Leslie Duncan

helped directly in coordination with Bhagavan Nath from Italy and then from Spain.

Many respected *guru-pīrs*, yogis and mahants were aware of this work, as Yogi Surajnath put Sabadis from time to time on the social media, and they were always very encouraging. Respectful seniors in the *Bheg Bhagavan*, Mahant Yogi Sevanath, Mahant Yogi Kishannath, both serving heads of the Nath *Jamāt*, Mahant Yogi Balaknath from the Baba Mastanath Math, Asthal Bohar, and Mahant Yogi Adityanath from the Gorakhnath Math, Gorakhpur, all these and many others, known and unknown, siddhas and *sādhus* from other schools, and common people, sensing the authenticity and immense significance of the Gorakh Sabadis, have kept in touch, directly or indirectly through social media. We are grateful to Ven. Bhikkhu Bodhi of the USA for providing translations of Pali verses. Respectful thanks are due to all of them for their support.

The *Math* of Yogi Surajnath, guru Budhnath ji, is at Pimpri Gawali, Parner, Dist. Ahmednagar, Maharashtra. Bhagavan Nath, guru Yogi Surajnath ji, now living in Spain, who is the first disciple and a friend of Yogi Surajnath, has given complete, thorough attention to this work on the Gorakh Sabadis. And many *sādhus* and affectionate people have cooperated in this work.

Gorakh – what a Mahayogi, Mahasiddha!

The Gorakh Sabadis are capable of producing any number of Gorakhs in the course of time.

Let intelligence go awake! Āge Āge Gorakh Jāge!



REFERENCES

- Barthwal (Barāthvāl), P.D., 1946/1955/1960/1994. (ed.) *Gorakh-Bānī*. Prayāg, Hindī Sāhitya-sammelan. [First published in 1942]
- Buddhaghōṣa, 1975, 1991, 2010. *Visuddhi magga, The Path of Purification*. Kandy, Buddhist Publication Society.
- Callewaert, W., 2009. *Dictionary of Bhakti: North-Indian bhakti texts into Khaṛī Bolī Hindī and English*. New Dehli, D.K. Printworld.
- Candranāth, Rāj Guru Yogi, 1975 (ed.). *Yogiyō kā Nityācār Akhaṇḍapūjā [Shrī Gorakh Guṭkā]*. Kalyān, Sevak Maṇḍal.
- Gangohi, Shaikh Abd-ul-Quddus, 1971. *Alakh Bānī or Rushd Nama*. Introduced and translated by S.A.A. Rizvi and Shailesh Zaidi. Aligarh, Bharat Prakashan Mandir.
- McGregor, R.S., 1995 (ed.). *The Oxford Hindi-English Dictionary*. Oxford, Oxford University Press.
- Offredi, M., 1991. *Lo Yoga di Gorakh: tre manoscritti inediti*. Milan, CE.S.Viet. [Transcription and translation into Italian of three unedited manuscripts from the Jodhpur Darbār Pustakālaya, viz. *Gorakh Bodh, Gyān Tilak, Sabdī*.]
- Śrīvāstava, R.L., 2071 V.S. (ed.). *Gorakh Bānī*. Gorakhpur, Gorakhnāth Mandir (3rd edition)
- Surajnath, Yogi, and Bhagavan Nath, 2022. गोरख सबदी, *The Sayings of Gorakh Nath* (3rd edition)
- Surajnath, Yogi, 2022. *Insight into Meditation and Yoga*.



